CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

10.2

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

c Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS

th, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundati

Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE

परमात्मयोग

u Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

आदर्श संन्यासी पुण्यश्लोक गुरुवर
स्वामी सहजानन्द सरस्वती जी
की
पावन स्मृति में

* स्वामी शिवानन्द सरस्वती
* कुणाल कुमार

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

मूल्य : रू० ४१·०० [सजिल्द]
रू० ३५·०० [सामान्य जिल्द]

© प्रकाशक

प्रकाशक : स्वामी सहजानन्द योग प्रशिक्षण संस्थान; पटना-१

मुद्रक : हिन्दुस्तानी प्रेस, भिखनापहाड़ी, पटना-४

PARMATMAYOGA

By— **Swami Shivanand Sarswati**
Kunal Kumar

प्रथम संस्करण—१९८५

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परमात्मयोग

* स्वामी शिवानन्द सरस्वती
* कुणाल कुमार

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

परमात्मयोग

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

स्वामी सहजानन्द योग प्रशिक्षण संस्थान

पटना-

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परमात्मयोग

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।'

(ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)

—'मन ही मनुष्य के बन्धन और मोक्ष का कारण है।'

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अपनी ओर से

प्रस्तुत ग्रन्थ 'परमात्मयोग' आत्मा-परमात्मा विषयक गूढ़ रहस्यों को परिमार्जित भाषा तथा सुबोधतम शैली में उद्भावित-सुप्रकाशित करने के उद्देश्य से रचित ग्रन्थ है, जिसमें विद्वान एवं सामान्य पाठक दोनों ही लाभान्वित होंगे।

लोकसमर्पित संन्यासी कर्मयोगी स्वामी शिवानन्द सरस्वतीजी के अनुरोध पर इस पुस्तक के प्रकाशन की दिशा में हमने अपने प्रातः-स्मरणीय दादाजी स्व० श्री हरिरामजी द्वारा संस्थापित ट्रस्टों के माध्यम से आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। पूज्य-पाद दादाजी ने ट्रस्टों को लोकहितैषी आयोजनों के सम्पादनार्थ स्थापित किया था। ये दोनों ट्रस्ट स्कूलों, अस्पतालों, कुँओं आदि के निर्माण में सहयोग देकर दादाजी के सपनों को साकार कर रहे हैं।

भगवान् से प्रार्थना है कि इन सभी कार्यों में सहयोग करते रहने की हमें प्रेरणा मिलती रहे, जिससे पूज्य दादाजी की आत्मा को शाश्वत शान्ति और अपार संतोष हो।

साबू जनकल्याण ट्रस्ट
साबू चैरिटी ट्रस्ट
इंडिया मशीनरी बिल्डिंग
एक्जीबिशन रोड, पटना

विनीत
सुदर्शन कुमार साबू

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पुरोवाक्

प्रकृत ग्रन्थ 'योग' के मर्मार्थ से संगति का सुन्दर-सुघड़ प्रयास है। यहाँ अभिप्रेत उस योग से है, जो मानव-जीवन के सत्य अथवा उसकी आत्मा का परिपूर्णतम उद्घाटन कर मानव-व्यक्तित्व को व्यक्तिगत अहंता की कंटकाकीर्ण परिधियों से ऊपर उठाकर उदात्त सौन्दर्य के ऐश्वर्य से सज्जित-ऊर्ज्जित किया करता है।

यह एक निविड़ भ्रान्ति है कि योग विरक्त-वितृष्ण अंतसों में ही अंकुरित-उद्रिक्त हुआ करता है तथा इसकी सन्दर्भ-पीठिका सांसारिकता से दूर, अतिशय सुदूर कहीं हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर या महाशून्य आकाश के अंक-पर्यंक में प्रतिष्ठित-प्रणिहित है।

वस्तुतः यह योग कर्त्तव्य-कर्म-धर्मा मानव-समाज के गहन जीवन का ही एक सम्पूर्ण दर्शन है। इसमें अद्भुत रूप से मानवानुबन्धी समस्त समस्याओं का सरल समाधान सन्निहित है और यह इसी विविध कर्म-पर्याकुलांत धरती पर मानव-जीवन को सर्वांगीण रूप से परिपूर्ण-कृत्य करने की शक्ति भी रखता है।

योग की समझ और साधना से मनुष्य अपने कायिक, मानसिक, प्राणिक तथा अन्यान्य लौकिक अस्तित्वों से विसंवृत-विवृत जीवन को भी सर्वतः सक्रिय सामंजस्य में संवारकर सुन्दर से सुन्दरतम, शिव से शिवतम तथा सत्य से बृहत्तम सत्य के आलोक का निराग्रह विग्रह बनता आया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आज के विक्षोभ-विताड़ित विश्व-जीवन को विषाद-विद्वेष, कुंठा-कर्कशता आदि के कलुष कुंभीपाक से उद्धृत-उदंजित कर निष्काम कर्मनिष्ठ सार्वभौम सात्विक व्यक्तित्व की उपलब्धि कराने के उद्देश्य से प्रणीत यह ग्रन्थ यदि अधुनातन जिज्ञासु पाठकों के मन-प्राण में योग के सम्बन्ध में कुछ भी औत्सुक्य उगा सका, तो सचमुच श्रम सुश्रम तथा साधना लोकातिग जनकल्याणी संसाधनी के रूप में आनन्दमय विश्रम के शुभावलम्ब बन जाएँगे।

ग्रन्थ की रचना के सन्दर्भ में भारतीय दर्शन, साहित्य तथा पद-विद्या के पारंगत पारखी लब्ध-सुवर्णपदक योगाचार्य आचार्य परमानन्दन शास्त्रीजी की अहैतुकी अनुकम्पा रही है जिसका शब्द से सीमन-परिसीमन अपनी सहजात शब्द-दरिद्रता के कारण सर्वथा अशक्य है।

स्वामी सहजानन्द योग प्रशिक्षण संस्थान, पटना द्वारा समय-समय पर संचालित होनेवाले योग-प्रचार अभियान के शिविरों, अ-शिविर आयोजनों के प्रति हार्दिक अनुराग प्रकट करनेवालों में अग्रणी सर्वश्री विमलानंद सरस्वती, सांसद डा० सी० पी० ठाकुर, डा० रामशरण सिंह, डा० श्रीनिवास, वाल्मीकि शर्मा (आई० पी० एस०), निशिकांत सिंह (आई० ए० एस०), बनवारी लाल शर्मा (बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना) जगदीश प्रसाद सिंह (मुख्य अभियन्ता), शशिभूषण राय (मुख्य अभियन्ता), अवधेश कुमार सिंह सुदर्शन कुमार साबू आदि श्रद्धेय मित्रों के प्रति भी अपने अन्स्तलीय आभारों का अप्रदर्शन एक अक्षम्य अपराध-सा ही होगा। जिनकी अनन्य साधारण सांस्कृतिक सुनिष्ठा की नींव पर ही आज राज्य तथा राजधानी में भी योगचेतना का विस्तार देखा जा रहा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

साथ ही, अपने भावी असंख्य-अनगिनत पाठकों के प्रति भी परि- पूर्ण पूर्वाभार प्रकट कर देना नितान्त आवश्यक मानते हैं जो अपने जीवन के महत् क्षण इस ग्रन्थ के संग बिता-बिताकर भौतिक- वादी आधुनिक जीवनरूपी लौह-पिण्ड को यौगिक आत्मसाक्षात्कार के माध्यम से 'सौवर्णी मुद्रा' का अक्षर-अविकारी स्वरूप देने का, 'जानताऽजानता वापि' 'श्रेयोभाक्' बन सकेंगे।

—ओम् ! तत्सत् !!

स्वामी शिवानन्द सरस्वती
कुणाल कुमार

महाशिवरात्रि
१७ फरवरी '८५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अनुक्रम

पुरोवाक्

प्रथम सोपान १९

द्वितीय सोपान ३७

तृतीय सोपान ५९

चतुर्थ सोपान ८५

पंचम सोपान ९५

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

परमात्मयोग

"अनन्त सत्य सतत ही इस लोक में विद्यमान है, वह अमर है, अज है। वह, जो विश्व का प्रभु है, जन-जन में है। मंदिर केवल एक है, वह है देह-मंदिर। यही अकेला मंदिर सनातन है। इसी देह में उसका, परमात्मा का, राजराजेश्वर का निवास है।

ईश्वर रूप में सबकी उपासना करो—सारे आकार उसके मंदिर हैं। बाकी सब कुछ भ्रम है। हमेशा भीतर की ओर देखो, बाहर की ओर कदापि नहीं।"

—स्वामी विवेकानन्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grar

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaor

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

परमात्मयोग

प्रथम सोपान

मनुष्य सृष्टि की उज्ज्वलतम उपलब्धि है। विधाता का विराट-तम चमत्कार है। इससे बड़ा कुछ भी नहीं है, कोई भी नहीं है—न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्'। 'अहं ब्रह्मास्मि', 'प्रज्ञानं ब्रह्म' तत्वमसि' 'अयमात्मा ब्रह्म', 'सोऽहम्' आदि-आदि मनुष्य के महा-वचन सत्य प्रमाणित हो चुके हैं। तन और मन दोनों की सामर्थ्य-सीमा के सन्दर्भ में मनुष्य अपनी उपमा आप है।

मनुष्य-जीवन भगवान् का प्राणी को दिया गया सबसे बहुमूल्य उपहार है। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण चेतन संरचना उसके भंडार में और कोई नहीं है। इसे अनुपम और अद्‌भुत कह सकते हैं। बोलना, विचारना, शिक्षा, कला, आजीविका-उपार्जन, भोजन-निश्चितता, वस्त्र, आवास, चिकित्सा; वाहन, परिवार, समाज, शासन, कृषि, पशुपालन; वैज्ञानिक उपकरण एवं अनेकानेक सुख-साधनों की सुविधा सृष्टि के अन्य किसी मानवेतर प्राणी को प्राप्त नहीं है।

संसार के प्रायः समस्त धर्मशास्त्रों के मुताबिक इतर प्राणियों के जीव-शरीर की तुलना में मानुषतन बहुत-बहुत विशिष्ट है। भगवान् श्री शंकराचार्य मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व (मुक्ति की इच्छा) तथा महापुरुष-संश्रय (महापुरुष से नेह-स्नेह) को तीन अति दुर्लभ पदार्थ कहते हैं और अन्तिम दोनों (मुमुक्षुत्व और महापुरुषसंश्रय) के माथे पर मनुष्यत्व को सजाते हैं। सचमुच, मानुषतन प्राप्त किए बिना न तो मुक्ति की ललक लहराएगी और न ही महापुरुष (सद्‌गुरु) का सम्पर्क-सान्निध्य मिलेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

चौरासी लाख योनियों की सीमा-रेखा लांघकर ही बड़े पुण्य से यह चौरासी अंगुल का मानुष-तन मिलता है। स्मरण रहे कि चौरासी लाख योनियों में स्थावर-जंगम सब शामिल हैं। स्वेदज, उद्भिज और जरायुज-इन तीनों तरह के प्राणधारियों में जरायुज श्रेष्ठ हैं। और जरायुजों में आदमी की जगह सबसे ज्यादा आदरणीया है। प्रत्येक मनुष्य प्रकृति का एक रूप है—एक बड़ा ही रम्य रूप, अत्यन्त सुभगस्वरूप।

प्रकृति में एक से बढ़कर एक अनेक बुद्धि-बल सन्निहित हैं और वे ही मौका पाकर मानुषतनों में उतरते रहते हैं। मानुषतन निखिल विश्व का सार-समुच्चय है। ब्रह्माण्ड का अंतरंग परिचय और प्रतीक है। नीचे, ऊपर और मध्य में जहाँ जो कुछ सार्थक है, सबका सार समेटकर मानुष-तन गढ़ा जाता है। कहते ही हैं—जो कुछ ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है और जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है। आदमी केवल विश्व-रूप ही है, ऐसा नहीं है। शास्त्रों ने इसे विश्वातीत विशुद्ध प्रकाशस्वरूप कहा है। यह एक साथ विश्व भी है और विश्वातीत भी है।

यह देह नहीं ; शिवमन्दिर

युग-मनीषी डा० भगवानदास के अनुसार 'यह देहरूपी मन्दिर जो जन्म के साथ हमें मिला है, उसमें एक शिवलिंग स्थापित है। दिनरात, आठों पहर बहनेवाली हमारी कर्मगंगा के जल से इसका अभिषेक होता है। गंगा का दूसरा नाम पुण्यतोया है—भगीरथ के पावन कर्मों की पुण्यवाहिनी। अतः हमारे दैनिक जीवन का कर्मप्रवाह पुण्यतोया होकर महाशिव का अभिषेक बने, तभी उनकी ज्योतिर्मयता हमारे भीतर जागेगी।'

पूर्णता की आभा केवल मानुष-तन से ही फूटती है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग-पिपीलिकादि की देहों में जिस तरह पूर्णता का अभिज्ञान नहीं होता वैसे ही देवताओं की देहों में भी नहीं होता। क्योंकि दे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

प्रकार की ये देहें भोग-देह के अन्तर्गत हैं। केवल मनुष्य को इच्छा, क्रिया और ज्ञान की त्रिधारा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त है। कुण्डलिनी-शक्ति का पूर्णोत्थान केवल मानुष-तन में ही मुमकिन है। परात्पर पुरुष को भी जब कुछ करना होता है, तब उसे मानुष-तन धारण करना होता है। देह तो वह और भी धारण कर ले सकता है, पर मानुष-तन में ही उसका पूर्णावतार होता है। इसीलिए तो देवगण भी मानुष-तन की याचनाएँ करते हैं। मानवी अंतराल में सत्यं-शिवं-सुन्दरम् सन्निवास करते हैं और सत्‌चित्‌-आनन्द की असंख्य विभूतियाँ वहाँ आसनस्थ हैं।

गजब मुहाल !

लेकिन आज अजीब हाल है। कुत्ते पर आदमी से ज्यादा विश्वास किया जा रहा है। सृष्टि का शृंगार-शिखर—मनुष्य—आज कहीं का नहीं रह गया है; किसी का नहीं रह गया है। बाप बेटों के खिलाफ है, बेटे बाप के खिलाफ हैं। पत्नियाँ पतियों के खिलाफ हैं, पति पत्नियों के खिलाफ हैं। कहीं कोई मिलन-मिलान नहीं, कोई तालमेल नहीं। लगता है, सारे छन्द टूट गए हैं—सारे सूत्र समाप्त हो गए हैं। आदमी आदमी के बीच अपरिचय और आशंकाओं के सौ-सौ सुमेरू उग आए हैं। जिससे मिलिए वही पसीना पोंछ रहा है, छटपटा रहा है। अशांति की आग में लिपटा पड़ा है। उसका चेहरा फूहड़ हो गया है। उसकी बोली बेसुरी हो गयी है। उसके अस्तित्व पर भांति-भांति के विपत्तिजनक आसार आधिपत्य जमा चुके हैं। उसकी जिजीविषा दिनानुदिन चुकती जा रही है। उसके चारों ओर अकथ्य कष्टों के श्मशान सुलग रहे हैं। उसपर चारों ओर से दारूण कष्टों के वज्र टूट रहे हैं। चतुर्दिक रोक-शोक का करूण हाहाकार सुनाई दे रहा है।

भौतिक विज्ञान के उत्कर्ष के इस युग में मानव-जीवन की बाहरी परिस्थितियाँ उत्तरोत्तर उन्नतिशील हैं। इसके पूर्व सामन्तयुग में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

कृषि तथा छोटे-मोटे उद्योगों के रूप में एक हद तक विकास होकर परिस्थितियों में स्थायित्व आ गया था और उन पर आधारित जीवन-मूल्यों, नैतिक दृष्टिकोणों, आचार-विचारों तथा सामाजिक सम्बन्धों में भी स्थायित्व आ गया था। वर्तमान युग में बाहर के जीवन की परिस्थितियाँ जिस प्रकार क्रियाशील हुई हैं उसी अनुपात में मानव-मन के मूल्य विकसित तथा परिवर्तित नहीं हो सके हैं। बाहर से हम मेघचुम्बी महलों में रहते हैं, रेलगाड़ी तथा वायुयानों से दूरी को गिराते-मिटाते रहते हैं, रेडियो, दूरदर्शन, रोबोट और कम्प्यूटरों जैसे कार्य-व्यापार के साधनों से लैस होकर जीवन की सुविधाओं का उपभोग करते हैं, किन्तु भीतर से हम अभी पिछले युगों के बौने स्वार्थों, अहंताओं, अन्धविश्वासों तथा संकीर्ण जीवन-परिभाषाओं की कारा में कैद, एक ओर जात-पाँत, वर्ण, सम्प्रदाय भाषा तथा धर्म-सम्बन्धी परिधियों से घिरे हुए हैं, दूसरी ओर हम नित्य नयी विषमताओं को जन्म देकर परस्पर की स्पर्धा तथा संघर्ष में सने हुए हैं। इस भौतिक सभ्यता के युग में व्यक्ति और समाज दोनों ही अशांत, असंतुष्ट, व्यग्र, अस्थिर तथा अनेकानेक उलझनों के कारण कर्त्तव्यविमूढ़ हैं। संपन्न देशों के लोग उतने ही अशान्त-उन्मत्त हैं, जितने निर्धन देशों के। सामाजिक मूल्य व्यक्ति का संचालन करने में असफल हो गये हैं। इस युग में वस्तुगत मन और आत्मगत मन में संतुलन न रहने के कारण बहिर्भ्रांत मानव-मन शांति के लिए, आनन्द तथा संतोष के लिए तरस-तड़प रहा है। मनुष्य के भीतर का मनुष्य, जो उसके मनुष्यत्व का प्रतिनिधि है—और 'देवाहुर्मनोमतं' के अनुसार जिससे मन संचालित होता या होना चाहिए वह चैतन्यबिन्दु उसके भीतर निष्क्रिय या बाह्य कुहासे से घिरकर सम्प्रति दृष्टिहीन हो गया है।

सर्वनाश अपने यज्ञ की पूर्णाहुति देने का तमाम इंतजाम कर चुका है। दूसरों के दुःख-दर्द के अपनयन के लिए प्राण दे देने की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बात तो दूर रहे, वह अपने आपको ही नष्ट कर देने पर आमादा हो चुका है।

आदमी को अनेक अपाहिज मनःस्थितियों ने दबोच लिया है। हर रोज बुलन्दतर होती जा रही आत्म-हत्याओं की संख्या इसका चहकता हुआ सबूत है कि आदमी ने दुर्भाग्य के रावण के सामने अपने घुटने टेक दिए हैं।

खुद ही खुदकुशी पर !

ऐसा क्यों है ? ऐसा क्यों हुआ ? इसके लिए दोषी कौन है ? कहना अनावश्यक है कि अपनी समस्त दुर्गतियों के एकांत उद्भव-कारण हम ही हैं। श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

'अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। जिस मनुष्य द्वारा मन और इन्द्रियोंसहित शरीर जीता हुआ है, उसका तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियोंसहित शरीर नहीं जीता गया है, उसके लिए वह आपही शत्रु के सदृश शत्रुता में वर्तता है।'

जिन्दगी भी एक कला है !

हमने अपनी सहज शक्तियों का विकास नहीं किया; उनका संग्रह और सदुपयोग नहीं किया। हमने यह नहीं जाना कि जीवन एक ऊँची कला है और कोई भी कला सहज साध्य नहीं होती। जीवन जंगल नहीं है; छोटा उद्यान है, गुलदस्ता है। इसमें एक-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

एक फूल को कलात्मक ढंग से रखने की आवश्यकता है। जीवन की गतिविधियों में सामंजस्य होना चाहिए। शारीरिक क्रियाएँ, सांसारिक साजोसमान और मानसिक विचार, जबतक इन तीनों में तालमेल नहीं होता तबतक रस कैसे आए, कहाँ से आए?

हमारे भीतर जो शक्ति है; वह 'वासुदेव शक्ति' है। इसके संपूर्ण उत्तेजन और उपयोग में ही हमारा अस्तित्व है; हमारी नम्रता और आस्तिकता है।

मनुष्य की लगन, सूझ-बूझ, प्रतिभा और तत्परता को जिस किसी भी केन्द्र पर निछावर कर दिया जाए, उसी में चमत्कारि उपलब्धियों के अनेक इन्द्रधनुष उग आते हैं। संसार की श्रेष्ठ उपलब्धियों का इतिहास इसी आधार पर लिखा गया है। उदासी, उपेक्षा, ढील-पोल रहने पर आधे शरीर; आधे मन से काम होता है। ध्यान के बँटे-बिखरे रहने और बेगार भुगतने की तरह काम करने पर ही थोड़े समय में—अधिक मात्रा में सध सकने वाला काम लम्बा समय खींच लेता है और आधे-अधूरे, काने-कुरूप स्तर का बन जाता है।

सफलताएँ आकस्मिक नहीं केवल परिश्रमसाध्य !

सफलताएँ आसमान से नहीं उतरतीं अपितु परिश्रम और मनोयोग के गर्भ से ही उद्भूत होती हैं। इस तथ्य से परिचि मनुष्य समय-समय पर अपने-अपने प्रयोजनों में विस्मयाव सफलताएँ संप्राप्त करते रहे हैं। 'अप्राप्यं नाम नेहाऽस्ति धीरस्य व्यवसायिनः।'—सोमदेव। अर्थात् अध्यवसायी धीर मनुष्य के लिए अप्राप्य कुछ नहीं। भविष्य में भी यदि कभी कठि असम्भव लगने वाले कार्य संपन्न होने लगें, तो समझना चाहि कि यह किसी जादू-चमत्कार या वरदान-अनुदान के आधार नहीं, लगन और तत्परता के मूल्य पर ही मुमकिन हो सका है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हमारे पूर्वजों के संकल्पों और प्रयत्नों ने ही अतीत में वह सब संभव कर दिखाया है, जिसे करने में आज मानवी पुरुषार्थ सफल नहीं हो रहा है। लगता है, ऐसे असंभवों को संभव कर दिखाना किसी देव-दानव का कृत्य ही हो सकता है। लेकिन रहस्य के फटते ही यह सच्चाई सामने आ खड़ी होती है कि मानवी प्रतिभा ही अपने विकसित रूप में देव-दानव की भूमिका निबाहती रहती है। मनोयोग और एकाग्र पुरुषार्थ का समन्वय हो सका तो फिर हाथ में लिए हुए कार्य उत्कृष्ट स्तर के बनते चले जाएँगे और इस क्रम का चलते रहना एक दिन उच्चस्तरीय सफलता प्रस्तुत किए बिना रहेगा नहीं। अनगढ़ मनुष्य ही पिछड़ा, पतित, व्यथित और विपन्न दीखता है।

प्रयाससाध्यं सुकृतम् !

कोई व्यक्ति माँ की उदर-दरी से ही महान् होकर उत्पन्न नहीं होता। जन्म लेते ही किसी शूरवीर या महाज्ञानी का बेटा भी महात्मा अथवा ज्ञानी नहीं बन जाता। यदि समुचित संपोषण और शिक्षा-दीक्षा नहीं मिले तो मनुष्य बूढ़ा होकर भी बालक जैसा ही बलहीन और बेवकूफ बना रहता है। यदि वह अभ्यास न करे तो पढ़ना-लिखना तो क्या, वह मनुष्य की बोली भी नहीं बोल सकता।

तपोमूलं जगत्सर्वम् !

किसी विद्वान् ने कहा है कि प्रत्येक मनुष्य का जीवन वहीं से शुरू होता है, जहाँ से लाखों वर्ष पूर्व हुआ है। मतलब यह कि जन्म से मनुष्य अक्षम, अयोग्य और असभ्य ही होता है। जिन खूबियों से लैस होकर वह शक्तिम, सुयोग्य और सत्पुरुष बनता है, उनका उत्तेजन—उपार्जन उसे स्वयं करना पड़ता है। ऋषियों के कथन हैं—"स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत।"—तैत्तिरीय उपनिषद्।—ईश्वर ने पहले तपस्या की फिर समस्त सृष्टि की रचना की। तपस्या जीवन-रथ की गति है। बिना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तपस्या के किसी भी आकांक्षा की पूर्ति असंभव है। तपस्या करना हमारा धर्म है। किसी दूसरे लोक के लिए नहीं, इसी लोक के लिए उसकी आवश्यकता होती है। तपस्या का मतलब है—संयम के साथ कष्ट भोगना; महत् उद्देश्यों की उपलब्धि के लिए सात्विक श्रम, साधना, अभ्यास, योग, मनोयोग व्यायाम। आत्मशक्ति का पूर्ण प्रस्फुटन तपस्या के बल पर ही सम्भव है। "तपोमूलमिदं सर्वं दैवमानुषकं सुखम्।"—मनु अर्थात् देवता और मनुष्य के समस्त सुख तपोमूलक हैं। तपोबल से ही हम कृतार्थ होते हैं।—'बिना चढ़े कमान के कैसे लागै तीर।' अपनी बेहद अजीज एवं करीब की वस्तु भी हमें यों ही नहीं मिल जाती। संस्कृत के एक सुभाषित में कहा गया है कि सोये सिंह के मुख में मृग स्वयं नहीं प्रविष्ट होते, इसके लिए सिंह को प्रयत्न करने होते हैं—'नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।' ईश्वर, जो हृदय में ही बसता है, मनुष्य को बिना योगाभ्यास के नहीं मिलता।

अज्ञानवश आत्म-विस्मृति !

जब हम अज्ञानवश स्वयं को नगण्य और निकृष्ट समझने लगते हैं, तब सचमुच हमारा आत्म-पतन शुरू हो जाता है। महर्षि वसिष्ठ ने सच ही कहा है—'मैं महज इतना ही हूँ'—इस सोच की भाव-दशा में आने पर विभु को भी बौनापन दबोच लेता है।

आत्मविस्मृति वस्तुतः अपने ही प्रति अन्याय है। आत्मविस्मृति का शिकार मनुष्य कर्त्तव्य-च्युत होकर मनुष्यता के अधिकार से वंचित हो जाता है। उचित है कि हम अपने यथार्थ रूप से परिचित हों और अपने मानवीय भावों को उद्बुद्ध करके मनुष्यता यानी आत्मपूर्णता हासिल करें। हमें मनुष्यता का ज्ञान-ध्यान होना चाहिए।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हम क्या हैं ? जीवन का स्वरूप एवं लक्ष्य क्या है ? जीवन से संलग्न विभूतियों का सही उपयोग क्या है ? इन प्रश्नों की उपेक्षा से हमारे रोम-रोम पर आत्म-विस्मृति का घना कुहासा छाया रहता है। अंतःकरण मूच्छित स्थिति में जा पहुँचता है और जीवन-नीति का सम्यक् निर्धारण नहीं हो पाता। इन्द्रियों की उत्तेजना ही प्रेरणा बनकर रह जाती है। प्रचलित ढर्रे का अनुगमन ही स्वभाव बन जाता है। अहंता की तृप्ति के इर्द-गिर्द ही तथाकथित प्रगति-कामना चक्रायित रहती है। कीट-पतंगों की तरह नर-पशु भी पेट और प्रजनन के लिए किसी प्रकार जीवित रहते हुए धीरे-धीरे मौत के निकट पहुँचता रहता है। कटी पतंग और वृक्ष की टहनी से टूटे पत्ते हवा के झोंको के साथ दिशा-विहीन स्थिति में यत्र-तत्र उड़ते और छितराते रहते हैं। हमारे जीवन भी इसी प्रकार जीने के लिए जीवित रहते हैं। किसी महत् उद्देश्य के प्रति समर्पण-भावना के अभाव में जीवन आनन्दविहीन हो जाता है। ऐसे ही रोते—कलपते, हारी-थकी जिन्दगी कट जाती है।

अत्यातुरता से सर्वनाश !

बहुत बार तो अधिक सुख की आतुरता में नीति, मर्यादा, औचित्य और विवेक की भी बलि चढ़ा दी जाती है और ऐसी राह पर कदम उठ चलते हैं, जिसमें न केवल अपना वरन् सम्बद्ध समाज का भी सुख-चैन स्वाहा हो जाता है।

बाह्य-ज्ञान की तरह अन्तःज्ञान भी आवश्यक है। सुख-साधनों की अभिवृद्धि की तरह उपभोक्ता की विवेक-दृष्टि का प्रखर होना भी आवश्यक है; अन्यथा सुख-साधनों का दुरुपयोग ही बन पड़ेगा और उससे अनेक विपन्नताएँ एवं आपदाएँ ही उत्पन्न होंगी। आत्म-ज्ञान की आवश्यकता भौतिक ज्ञान से भी अधिक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

अहम्-कोऽहम् ?

आत्म-ज्ञान की आवश्यकता यदि अनुभव की जा सके तो ह सर्वप्रथम यह विचारना होगा कि हम हैं क्या ? और आखिर क जीवित है ? इस तथ्य पर आत्मवेत्ता महामनीषियों ने अपने गम्भी चिन्तन-मनन से जो उपसंहार उपस्थापित किए हैं, वे अतीव महत्त्व पूर्ण हैं। अतीत में भारत ने उन्हें अपनाकर सर्वतोमुखी उत्कर्ष लाभ उठाया था।

कोऽयमात्मा ?

अणु क्या है ? सुविस्तृत पदार्थ वैभव का एक छोटा-सा घटक आत्मा क्या है ? परमात्म सत्ता का एक छोटा-सा अंश। अणु क अपनी स्वतन्त्र सत्ता लगती भर है, पर जिस ऊर्जा आवेश के कार उसका अस्तित्व उज्जीवित है तथा उसमें क्रियाशीलता है, व्यापक ऊर्जा तत्त्व से सर्वथा अभिन्न है। एक ही सूर्य की अन किरणें दिग्-दिगन्त में परिव्याप्त हैं। एक ही समुद्र में अनेकाने लहरें उठती-गिरती हैं। देखने में ये किरणें और लहरें स्वतन्त्र औ एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होती हैं। पर गम्भीर दृष्टि स्पष्ट देखत हैं कि यह भिन्नता बेमानी है और एकता ही वास्तविक है। अल अलग पात्रों के बीच रहने वाले आकाश अपनी सीमा में बँधे होने कारण अलग-अलग लगते हैं तो भी उनका अस्तित्व निखि आकाशीय सत्ता से भिन्न नहीं है, पानी में अनेक बुलबुले उठते औ विलीन होते रहते हैं : बहती धारा में भंवर पड़ते हैं। दीखने बुलबुले और भंवर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व प्रकट कर र होते हैं, पर यथार्थ में वे प्रवहमान जलधारा की सामयिक हलच मात्र हैं। जीवात्मा की सत्ता यद्यपि स्वतंत्र दीखती है प सत्यतः उसका अस्तित्व एवं स्वरूप व्यापक चेतना का एक अं मात्र है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

समस्त दुर्भाग्यों की जड़ में आत्मविस्मृति ही है। अपने ही को गँवाकर कोई क्या कमाएगा! मनुष्य वहीं अभागा होता है, जहाँ वह अपने स्वान्तस्थ स्वरूप से अनजान होने के कारण अपने तन और मन को ही अपना स्वरूप समझ लेता है। इस समझ का कुफल होता है कि वह नृपशु बन जाता है। पशु को आत्मा की अनुभूति नहीं होती। पशु अपनी सहज वासनाओं का दास होता है। आत्मानुभूति से वंचित मनुष्य भी जानवर-सा आचरण करता है। वह क्रूर, कापुरुष पशु ही बना रहता है और दैहिक सुख तथा वासनाओं की तृषा-तृप्ति के लिए स्वभाव-विरुद्ध कर्म करने लगता है।

श्री चाणक्य कहते हैं—

आहार-निद्रा-भय-मैथुनानि
समानि चैतानि नृणां पशूनाम्।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥

'आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये मनुष्यों और पशुओं में एक समान ही हैं। मनुष्यों में अधिकता और विशेषता यही है कि उनमें धर्म का ज्ञान है; किन्तु धर्मज्ञान से शून्य मनुष्य पशुओं के ही तुल्य हैं।'

बाह्यदृष्टिता से आत्महानि!

बाह्य-वस्तुओं की अभिलाषा करते रहने से आत्मा में न्यूनता आती है और इससे चित्त क्षुब्ध होता है। साधारणतया लोग अपना अस्तित्व शरीर और मन से बने काय-कलेवर तक ही सीमित समझते हैं। वासना और तृष्णा में ही उलझा चित्त इससे ऊपर और अलग कुछ सोच ही नहीं पाता। सारे क्रिया-कलाप मात्र पेट प्रजनन के लिए होते हैं। इसका एकमेव कारण है अपनी गरिमा को, अपने देवत्व को दबा देना, भुला देना। प्रत्येक मनुष्य की संरचना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दो प्रकार की होती है—दिव्य और पार्थिव। प्रायः लोग अप... जीवन के दुर्बल अंग का ही ध्यान रखते हैं और प्रबल पक्ष-दिव्यता-... के प्रति आस्थावान नहीं रहते। यही आत्महीनता का कारण है। ईश्वर के युवराज के रूप में अवतरित मनुष्य मार्ग पर चलते हु... भटक जाता है।

आत्मविस्मृति की निरन्तरित प्रक्रिया !

मनुष्य पुनर्पुनः आत्मा को भूलता रहता है। वह अपने ... खंडित रूप में ग्रहण करता है। खेल के मैदान में खड़ा होकर व... अपने को बस खिलाड़ी समझता है। लड़ाई के मैदान में योद्धा कहत... है। संतान के सम्मुख होते ही बाप बन जाता है। वकील कचह... के आर-पार कुछ देखना नहीं चाहता। दारोगा के लिए थाना ह... त्रिलोक होता है। व्यापारी बही-खाते को अपना सर्वस्व स्वीकार लेत... है। वह सदा भूल जाता है कि मैं तो विशुद्ध रंगहीन, उपाधि-... वर्जित परिशुद्ध आत्मा हूँ। वह जिस परिस्थिति में जाता है, उसी ... दासता कबूल लेता है। यही स्मृति-भ्रंश है, यही आत्मविस्मृ... है। मनुष्य जब अपना भान भूल जाता है, तो उसकी बुद्धि राख ह... जाती है। अर्थात् वह विषयाधीन हो जाती है। और बुद्धि जब विषय... धीनया विषयनिष्ठ हो जाती है, तब वह अपनी मूल स्थिति गँवा बैठ... है। बुद्धि की मूल स्थिति का नष्ट होना ही बुद्धि-नाश कहलाता है... मनुष्य जब अपने स्वरूप को बिसरा बैठता है, तब उसकी बुद्धि अप... मूल जगह छोड़ देती है। 'स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशः'। बुद्धि से अ... है—ज्ञान-शक्ति। आत्मा को जानने-पहिचानने की कूव्वत बुद्धि में ... हैं। बुद्धि एक सर्वकांतिमय, सर्वप्रभावती शक्ति है।

बुद्धि स्वभाव से ही सत्य की ओर दौड़ती है—तत्त्वपक्षपातो ... धियां स्वभावः। पश्चिमी लोग बुद्धि को भले ही मन की मानि... मानें, भारतीय विचारकों के मत से तो वह आत्मजा है। अप...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विषय-वासनाओं की तृषा तृप्त करने के लिए अपनी आत्मजा से स्वभाव-विरुद्ध कार्य करवाना सर्वथा अशोभन और उपेक्षणीय कार्य है। ब्राह्मणी (बुद्धि) की पवित्रता संरक्षणीय है। ब्रह्म से संयुक्त होने पर वह मनुष्योचित रचनात्मक कार्यों में प्रवृत्त होती है। मन से नियंत्रित होकर तो वह उच्छृङ्खल हो जाती है और उसके द्वारा ऐसे कुकृत्य होने लगते हैं, जिनसे मनुष्यत्व की महिमा माटी हो जाती है। जिस बुद्धि ने आत्मनिष्ठता खो दी है, वह यों चाहें कितनी भी सतेज दिखाई दे, वास्तव में यही समझना चाहिए कि उसने आत्मनाश कर लिया है।

वैचारिक विकृति बनाम आत्मविस्मृति

विचार के समान प्रभा, विचार के समान तेज दूसरी किसी भी वस्तु में नहीं है। ऐसी विचार-समर्थ बुद्धि को साधारण विषय-रस की विचिकित्सा में नियोजित करना उसके प्रति निर्दयता बरतना है। इससे मनुष्य बेहूदा हो जाता है। उसकी आत्मा की स्वाभाविक पवित्रता और पूर्णता का संकोच होता है। उसकी आत्मा और बुद्धि उसके पेट से दब जाती है। फिर वह आदमी न रहकर एक बाजारू जन्तु भर बन जाता है।

आत्म-विस्मृति की ग्रंथि से ग्रसित व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को समझने और उन्हें निरस्त करने का साहस नहीं जुटा पाते। गहराई में प्रवेश करके आत्म-निरीक्षण करना उनसे बन नहीं पड़ता, अस्तु सामने प्रस्तुत प्रतिकूलताओं का सारा दोष वे किन्हीं अन्य व्यक्तियों या परिस्थितियों पर थोपकर अपने जी हलका करते हैं। कोई और नहीं दिखता तो बेचारे ग्रह-नक्षत्रों को, भाग्य को, दैवी प्रकोप को, समय की विपरीतता को कोसने की आत्म-प्रवंचना अपनाने लगते हैं। दूसरा क्रम उनका यह होता है कि अभीष्ट सफलताओं के लिए—जिस-तिस की कृपा प्राप्त करने के लिए सबके सामने हीनता भरी याचना करते फिरें। अपने पौरूष पर जिन्हें विश्वास नहीं उन्हीं को प्रत्यक्ष या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

परोक्ष रूप में भिक्षावृत्ति का आश्रय लेते पाया जाता है। दीनताग्रस्त व्यक्ति यदि कहीं से कुछ प्राप्त कर भी ले तो परावलम्बन अपनाने के कारण अन्ततः घाटे में ही रहता है। प्रगति की अगणित संभावनाएँ आत्म-विश्वास के साथ जुड़ी होती हैं; यदि उस गरिमा को दुर्बल बना दिया गया तो फिर छिटपुट उपलब्धियों का क्या मूल्य रह गया? सुविधायें आती और चली जाती हैं; पर जो भावनात्मक क्षति पहुँचती है उसकी तुलना में अनुदान, वरदान का लाभ तुच्छ बैठता है।

वरेण्य भूमाः !

लघुता को लांघ जाने में ही, नकार देने में ही जीवन की जय है। 'यो वै भूमा तत्सुखम्, नाल्पे सुखम्।'—महत्ता ही सुख है, लघुता सुख नहीं है।

ऋग्वेद का कथन है—

"विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो बुरीत सख्यम्।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे।"

—"प्रत्येक मनुष्य सबके रहनुमा प्रकाश-स्वरूप भगवान की निकटता प्राप्त करे और संसार के समस्त धनों को पाने के प्रयत्न करे और पुष्टि के लिए पर्याप्त वस्तुएँ उपलब्ध करे।"

भूमावरण में जीवनसार्थक्य !

यही जीवन-सार्थक्य का अचूक दिव्यमंत्र है। उन्नति का आकाश सबके लिए समान भाव से उन्मुक्त है। श्रेष्ठ पुरुषों के चरित्र से यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य तुच्छ जीव नहीं है; उसके भीतर भगवान का तेज, सृष्टि का सत्त्व, सिद्धि का महासागर हिलोरें लेता रहता है। भगवान् की विभूतियाँ परलोक में नहीं, इसी लोक में सर्वसुलभ हैं। प्रत्येक ईश्वरपुत्र, जिसे तत्त्वज्ञों ने अमृतपुत्र कहा है, चाहे वह जिस हाल में हो, ईश्वर की संपत्ति का स्पष्ट हकदार है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

समस्त ऐश्वर्यों की उपलब्धि उसका सहज धर्म है। सामान्य से सामान्य व्यक्ति को भी आत्मोन्नति के हर शिखर पर चढ़ने का प्रत्येक हक हासिल है। उन्नति का उल्लास तपस्या, सुयोग्यता और सदाचार से ही उमगता और उपलब्ध होता है।

ऊर्ध्वयान की महत्ता

गीता कहती है—'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः।' और कहना बहुत आवश्यक नहीं कि मनुष्य के जीवन में जीवंतता और दिव्यता का संचार केवल 'योग' के सहारे ही संभव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

द्वितीय सोपान

- योग-निर्वचन
- योग की उपयोजना भूमि
- रूपं रूपं प्रतिरूपो योगः
- राजयोग

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

योग-निर्वचन

योग शब्द 'युज्-समाधौ' धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ —ध्यान लगाना। ऐसी मान्यता है कि योग वह क्रिया-कलाप है, सिसे जीवात्मा परमात्मा से मिलता है।

तत्त्वतः अकाम, निष्काम, ब्रह्म—ये परमात्मा के ही पर्याय थवा ब्रह्म प्राप्त व्यक्ति के विशेषण हैं—'योऽकामो निष्काम आप्त-म आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।' हदा० उ० ४।४।६) 'श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य' (तैत्तिरीयोप० २।६-८), 'भिद्यते हृदयग्रन्थिः', 'अज अनवद्य अकाम अभोगी', दपि अकाम तदपि भगवाना' इत्यादि कथनों से यह सुस्पष्ट है। ी प्रकार योग भी परमात्मा का नाम है—'योगो योगविदां नेता वष्णु सह० १६)।

भारतीय साहित्य में आध्यात्मिक तथा धार्मिक संदर्भों में जिन दों का व्यापक प्रयोग हुआ है, उनमें से 'योग' भी अन्यतम है। तुस्थिति यह है कि आत्मा, ब्रह्म, जीव, मोक्ष, निर्वाण, धर्म और वर की भाँति 'योग' का भी प्रयोग जमकर हुआ है।

तीन प्रमुख धाराएँ

भारतीय विचार-धारा मुख्यतः तीन धाराओं में विभक्त है—) वैदिकधारा, (२) बौद्धधारा और (३) जैनधारा। इनमें धिक प्राचीन वैदिकधारा है। इसे नैगम अथवा वेदमूलक कह ो हैं। उल्लेखनीय है कि वेद केवल संहिताओं को ही नहीं कहते त ब्राह्मण ग्रंथ भी इस नाम के अधिकारी हैं। इतना सुनिश्चित वेद हिन्दुओं के आदि धर्मग्रंथ है। वेद प्राचीन संस्कृत भाषा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

(वैदिक भाषा) में है एवं वेद पर आधृत अन्य ग्रंथ भी संस्कृत में हैं, यथा—रामायण, महाभारत, महापुराण, उपपुराण, स्मृति प्रभृति। इन सबमें से बहुतों में 'योग' शब्द अनेक बार चर्चित हु है; कहीं स्वतंत्र रूप में, कहीं आनुषङ्गिक रूप में।

वैदिक परिभाषा

वेदांत के मतानुसार "संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनो (योग याज्ञवल्क्यम्) "जीवात्मा और परमात्मा की एकता अनुभव करने का नाम ही योग है।"

कठोपनिषद् में कहा गया है :

"तं दुर्दर्शं गूढ़मनुप्रविष्टं
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥

(कठ० १-२

"उस कठिनता से दीख पड़नेवाले, गूढ़ स्थान में अनुप्र बुद्धि में स्थित, गहन स्थान में रहनेवाले, पुरातन देव को अध्य योग की प्राप्ति द्वारा जानकर धीर (बुद्धिमान्) पुरुष हर्ष-शो त्याग देता है।

'श्वेताश्वतर उपनिषद्' के द्वितीय अध्याय में कहा गया है :

"लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं
वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं
योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति॥"

(श्वेता० २

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

"योग-साधना द्वारा शरीर का हल्का होना, आरोग्य, अलोलुपत्व, नेत्रों को प्रसन्नता देनें वाली कांति, मधुर स्वर; शुभ गन्ध और मल-मूत्र में कमी आदि लक्षण प्रथम प्रकट होते हैं।"

अन्य स्थान पर यह भी कहा गया है :

"न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्" ॥

(श्वेता० २-१२)

"योग जिसे प्राप्त हो जाता है, उसे कोई रोग नहीं होता, बुढ़ापा नहीं आता और उसकी मृत्यु भी नहीं होती। उसे योगमय शरीर मिल जाता है।"

योग भी अनादि है !

'योग' शब्द का प्रयोग भारतीय साहित्य में चाहे आगे-पीछे जब कभी हुआ हो, इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि योग की विधि वेदोक्त ही है। इतिहास प्रमाण है कि ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप आदि भी योग में निपुण थे। सुदूर सिन्धु-सभ्यता के युग में जो ध्याननिष्ठित नेत्रवाली मूर्त्ति मिली है, वह सम्भवतः किसी योगी की है। इससे भी स्पष्ट है कि योग सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रचलित है। अथर्ववेद (१०-२-२६) में योग का मौलिक अर्थ इस प्रकार बताया गया है—

"मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत् ॥
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधिशीर्षतः ॥"

—अर्थात् 'अथर्वा सिर और हृदय को आपस में सीकर प्राण को सिर के बीच में और मस्तिष्क के ऊपर प्रेरित करता है।'

बौद्ध प्रस्थान

दूसरी दार्शनिक धारा 'बौद्धधारा' है। इसका आविर्भाव भगवान् बुद्ध के उपदेशों से होता है। बौद्धग्रन्थ पालि भाषा में है। बौद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ग्रन्थ भी योग और योगियों की चर्चाओं से भरे पड़े हैं। भगवान् बु का जीवन स्वतः इसका प्रतीक है। जिस 'मध्यम मार्ग' का उपदे उन्होंने दिया था, वह उनकी वर्षों की योगसाधना की चर उपलब्धि थी। अर्हत् पद, जहां पहुँचकर फिर जन्म नहीं लेना होत योगजन्य समाधि का ही प्रतिफल है।

तपोयोग

तीसरी धारा जैन दर्शन की है। इसके संस्थापक वर्द्धमा महावीर तथा उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकर थे। इनके भी मुख्य प्रस्थ 'प्रामाणिक ग्रन्थ' पालिभाषा में हैं। इस सम्प्रदाय में योग की ज तपश्चर्या को दी गयी है। इस कारण जैन वाङ्मय में योग अ योगियों की कम चर्चा उपलब्ध है।

तुरीय प्रस्थान

इन तीन दार्शनिक धाराओं के अतिरिक्त एक चौथी धार भी उद्भव हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका भी महत्त्व इसे तन्त्र शास्त्र कहते हैं।

तन्त्रशास्त्र स्पष्टतः द्विधा विभक्त है। पहला विभाग चंचु डूबोने वालों के लिए है। इसी में मद्य, मांस और मैथुन को स दिया गया है। दूसरा विभाग अच्छे साधकों, मुमुक्षुओं के लिए यह पथ योग से प्रायः अभिन्न है। इसलिए तन्त्र ग्रन्थ प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से, साधारण और समाधि भाषा में, और प्रतीकों के माध्यम से, योग बड़े गाम्भीर्य और विस्तार के स चर्चित है। तांत्रिक साधकों में अनेक प्रसिद्ध योगी हो चुके हैं।

तांत्रिकी धारा

तन्त्र-शास्त्र के दो भेद हैं (१) आगम और (२) बौद्ध। त का जो रूप वैदिक समाज में प्रस्फुटित हुआ उसे 'आगम' कहते है

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

निगम हैं, तन्त्र आगम हैं। वैसे आधुनिक जैन आगमों की संख्या अधिक है। बौद्ध-तन्त्र भी अनेक हैं। तन्त्रशास्त्र के दो भेद —(१) शैव (२) शाक्त। बौद्धतन्त्र और आगम में यह भेद है आगम के लिए परमपुरुषार्थ मोक्ष है, परन्तु बौद्धतन्त्र में चरम-य 'निर्वाण' है। इसके अतिरिक्त आगमग्रन्थ वेद को प्रमाण नहीं नते हैं; परन्तु बौद्धतन्त्र ग्रन्थ बुद्ध के उपदेशों को पूर्णतया प्रमाण नते हैं।

अवारित प्रयोग

ज्योतिष में ग्रहों और नक्षत्रों की विशेष स्थिति को 'योग' कहते आयुर्वेद में औषधियों के मिश्रण को 'योग' कहते हैं। युक्ति-क योग शब्द 'जोगाड़' में स्पष्ट है।

आयुर्वेद-शास्त्र में योग शब्द 'समाधि' के अथ में भी प्रयुक्त होता जब वात, पित्त और कफ तीनों दोप एक साथ उद्दीप्त होते हैं उस अवस्था को सन्निपात कहते हैं तथा जिस समय ये तीनों समान रूप से एक साथ शान्त हो जाते हैं, तब उस अवस्था को ाधि' कहते हैं। वहाँ (आयुर्वेद में) यह स्पष्ट है कि यह अवस्था का सूचक है।

अवसान आत्मदर्शन में !

ध्यात्म और योग के सम्बन्ध में बहुधा लोग शंका करते हैं, इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यद्यपि तः योग का सम्बन्ध धर्म से नहीं है; क्योंकि धर्म तो मुख्य-यज्ञ, दान, शौचादि आचार या तप, स्वाध्यायादि अष्टांग, ा पुण्यों का नाम है तथापि इस सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य का यह भी ध्येय है कि 'अयं तु परमो धर्मः यद् योगेनात्मदर्शनम्' अर्थात् के द्वारा आत्मा का दर्शन करना तो सबसे बड़ा धर्म है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

योग की उपयोजना भूमि

मनुष्य जब आंतरिक स्तर पर भगवान् का स्पर्श करता है उसे ही योग कहते हैं। यहाँ 'भगवान्' शब्द का जो भी अर्थ जाए, कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। महज इतनी स्वीकृ पर्याप्त है कि मनुष्य से उच्चतर, बृहत्तर विश्वव्यापी अथवा कोई एक जागृत सत्ता है। इस प्रकार भक्त के साथ भग अहं के साथ ईश्वर के, जीव के साथ शिव के, आत्मा परमात्मा के संयोग को हम योग कह सकते हैं। इसमें मूल संयोग, यह संबंध-स्थापन ही है। इसी से योग-साधना होती है। परन्तु इस साधना की प्रणाली, गति, परिणति सबकुछ इस बात पर अवलम्बित है कि मनुष्य अपने किस किस क्षेत्र में भगवान् के साथ युक्त हुआ है या होना च उसके किस अंग में भगवान् का स्पर्श हुआ है।

मानव केवल भाव-समष्टि

निर्विवादतः मनुष्य कोई विशुद्ध, अमिश्र, अखण्ड वस्तु वह विभिन्न और विपरीत अनेक गुणों की समष्टि है, सभी स्तर उसके अंदर ग्रथित हैं, सृष्टि की समस्त धारा भीतर प्रवाहित हैं। हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि तीन स्तर एक के ऊपर एक उसके अंदर विन्यस्त हैं। पह है देह और देह को संजीवित रखनेवाली जीवनीशक्ति या प्रा दूसरा स्तर है मन, इसी ऊर्ध्वतर क्षेत्र में बुद्धि, विचार, भावुकता आदि करिश्में चलते रहते हैं। तीसरा और क्षेत्र है अध्यात्मबोध, जिसका स्वरूप है विज्ञानमय, आनन्द अमृतत्व का अधिष्ठान है। सांप्रतिक युग में मानव-प्रकृति

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

स आत्मा से ज्ञानपूर्वक परिचित नहीं हुई है, उसे अपने मन के खेल भीतर ही आभास या संकेत के द्वारा इस आत्मा का बोध होता । परन्तु वही सृष्टि का चरम लक्ष्य है। देह और प्राण को लिए ए जो भाव है, वह मनुष्य का मनुष्य-भाव है और तुरीय ज्ञान तथा नन्द को लिए जो भाव है वह मनुष्य का देवभाव, सिद्धभाव या गवत भाव है। विवर्तन की गति पशुभाव से मनुष्यभाव में, र मनुष्य भाव से देवभाव में क्रमशः आरोहण करने के लिए रंभ हुई है। मनुष्य के अंदर जो शक्ति मनुष्य को पशुभाव और नुष्यभाव से ऊपर उठाकर देवभाव में स्थापित करना चाहती है, सी का नाम योगशक्ति है और इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए जिस र्ग पर चलना होता है, जिस प्रकार से जीवन को गढ़ना और लाना होता है, उसी का नाम योगसाधना है।

साधना के तीन स्तर

भारतवर्ष में जो भिन्न-भिन्न साधनामार्ग प्रचलित हैं, वे भी ष्य की इस त्रिधाभिन्न प्रकृति के अनुसार विभिन्न स्तरों में वस्थित हैं। पहला है हठयोग। हठयोग का क्षेत्र मनुष्य का से नीचे का स्तर—उसका स्थूल शरीर है। शरीर और प्राणशक्ति केन्द्र बनाकर उसके अंदर ही भगवान् के स्पर्श का अनुभव करना योग का उद्देश्य है। इसके बाद राजयोग मनुष्य के दूसरे स्तर ऊपर स्थापित है। समस्त मन के द्वारा, मन की किसी विशेष या क्रीड़ा द्वारा नहीं, बल्कि मन की जो मूल प्रकृति है उसी ससत्ता अथवा चित्त के द्वारा राजयोग मनुष्य को साधनामार्ग नियंत्रित और परिचालित करता है। राजयोग मनुष्य के सूक्ष्म र में केन्द्रीभूत हुआ है। फिर सबके अंत में मनुष्य की यात्मिक वृत्ति के ऊपर प्रतिष्ठित हैं मार्गत्रय—(१) ज्ञानयोग, भक्तियोग और (३) कर्मयोग। ज्ञान, प्रेम और कर्म-प्रेरणा—ीन मन के प्रकरण हैं। इन्हीं तीनों में से क्रमशः एक-एक के

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ऊपर निर्भर करके ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग उन्ह सहायता से मनुष्य को भागवत सत्ता में परिणत करना चाहते मार्गत्रयी का केन्द्र न तो मनुष्य का स्थूल शरीर है—न सूक्ष्म श उसका केन्द्र है आत्मा, जीव या पुरुष। ज्ञान, प्रेम अथवा के द्वारा आत्मा के साथ परमात्मा का, जीव के साथ भगवान् पुरुष के साथ पुरुषोत्तम का साक्षात् संबंध स्थापित करना त्रिमार्ग का अध्यात्म-योग है।

द्विधा लक्ष्य—जीवन्मुक्ति और कैवल्य

इन भिन्न-भिन्न साधना-पथों का सार्थक्य क्या है, इनकी कमी क्या है, इनका गुण क्या है या दोष क्या है, इसका वि करने के पूर्व सबसे पहले इस बात का स्पष्ट निर्देश करने आवश्यकता है कि साधना का उद्देश्य क्या है, योग का लक्ष्य है। कारण एकमात्र उद्देश्य के द्वारा ही उपाय की सफलता विफलता का विचार करना संभव होता है। किस साधना-प क्या उपयोगिता और क्या अनुपयोगिता है, इसका निर्णय तो बात से करना चाहिए कि किस लक्ष्य को सामने रखकर साधना आरंभ की है। योगसाधना के दो लक्ष्य हमारे सामने कैवल्यमुक्ति और जीवन्मुक्ति। मायावादियों की तरह यदि जगत् को केवल मरीचिका, दुःस्वप्नमात्र मानें, बौद्धों की तरह हम मनुष्य की, सृष्टि को 'क्षणिक वेदनाओं की समष्टि' के स्वीकार करें तो फिर हम जगत् में रहने की इच्छा ही क्यों कर किसी प्रकार इस दुःस्वप्न को विध्वस्त कर डालने में ही नि:श्रेयस है; दीपशिखा की भांति किसी प्रकार बुझ जाने परम पुरुषार्थ है। जीवन को मिटाकर, जगत् के साथ सम्पर्कशून्य होकर, उनके परे, 'किसी कुछ' अथवा 'कुछ नहीं' अंदर जाकर घुलमिल जाना ही कैवल्यमुक्ति है। यदि यही साधना का लक्ष्य हो तो फिर इन सब भिन्न-भिन्न साधना-पथों

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

स्पर तुलना करने या उनके गुण-दोषों का विचार करने, उनका न्वय करने की चेष्टा करने की विशेष कोई अनिवार्यता नहीं रह ती। ऐसे में चाहे जिस पथ को ही क्यों न पसंद करें, बस एक पसन्द करके फिर सीधे उसी मार्ग पर बराबर चलते रहने से अभीष्ट सिद्धि हो जाएगी। ऊपर उठ जाना ही जब एकमात्र य है तब उपाय चाहे रस्सी हो, बाँस की सीढ़ी हो या पत्थर की हो, उससे क्या अंतर पड़ता है? किसी प्रकार पार होने से लब। हाँ, यह ठीक है कि भिन्न-भिन्न स्वभाव, भिन्न-भिन्न ति के अनुसार कोई मार्ग किसी के लिए सुगम और किसी के दुर्गम होता है। परन्तु इतना विचार कर लेना तो किसी भी क के लिए बहुत कठिन नहीं है।

योग नकारना नहीं—सकारना सिखलाता

परन्तु जगत् का अर्थ यदि हमारे लिए कुछ और हो, जगत् मोह दुःस्वप्न नहीं, बल्कि आनन्दमय हो, जगत् को ही यदि हम यस का आधार मानते हों, जीवन को अस्वीकार करके नहीं; उसका आलिंगन करके ही यदि हम मुक्त, सिद्ध होना चाहते हों फिर योगसाधना की एक पूर्ण रूप से नवीन मूर्त्ति हमारे नेत्रों मने प्रस्फुटित हो उठेगी। मनुष्यरूप मंदिर के भगवान् केवल र के शिखर पर ही अधिष्ठित हों, ऐसी बात नहीं है और न है कि यह मंदिर उस शिखर पर चढ़ने के लिए केवल एक सीढ़ी हो। इस मंदिर के तमाम कक्ष भगवान् के प्रतिष्ठान हैं, सभी ओं के निवासधाम हैं—सबको एक साथ परिष्कृत, परिमार्जित होगा, सबके अंदर एक साथ यज्ञकुण्ड प्रज्वलित रखना नहीं। शरीर केवल शरीर के पार जाने के लिए ही नहीं है, प्रेम और कर्म केवल ज्ञान, प्रेम और कर्म के परे जाने के थों ही नहीं हैं, व्यक्तित्व केवल व्यक्तित्व को विनष्ट करने के लिए

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

अभ्यासयोग

कर्मयोग से मन और चित्त की शुद्धि होने पर ही मनो[illegible] संभव है। अनेक यत्न करने पर भी जो बहुत-से लोग मन का [illegible] नहीं कर सकते उसका मुख्य कारण है कि वे पहले कर्मयोग [illegible] अपने चित्त की शुद्धि नहीं करते। अभ्यास और वैराग्य ही मनो[illegible] के प्रधान उपाय हैं :

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

गीता (६।३[illegible]

योग-साधन का प्रकार

प्राणायाम (गीता ४।२९) और लक्ष्ययोग—दृष्टि को नासि[illegible] अग्रभाग आदि किसी स्थान विशेष में संलग्न करना (गीता [illegible] —प्रभृति मनोनिग्रह के साधन अभ्यास यहाँ वर्णित हैं। [illegible] अभ्यास यह है—'कामात्मक संकल्प को त्यागकर इन्द्रियों की [illegible] मुख वृत्तियों को अन्तर्मुख करके धीरे-धीरे बुद्धि के द्वारा [illegible] भावनाओं को रोककर चित्त को कारण-शरीरस्थ जीवात्मा में [illegible] करना और फिर किसी भी भावना को न आने देना :—

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥

गीता (६।२[illegible]

× × × ×

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥

गीता (६।२[illegible]

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

जब-जब यह चंचल चित्त आत्मा से अन्यत्र जाए, तब-तब उसको वहाँ से लौटाकर फिर आत्मा में स्थिर करना (गीता ६।२६)—इस प्रकार एकाग्रता करने की अनथक चेष्टा ही यथार्थ अभ्यास है।

सर्वोत्तम प्रकार

परमोत्तम अभ्यास यह है कि चित्त आत्मा के बदले श्रीभगवान् में संलग्न कर दिया जाए (गीता ६।१४) ; क्योंकि योगाभ्यासियों में अंतरात्मा को श्रीभगवान् में अर्पित कर श्रद्धा से उनका भजन करनेवाला योगी ही परमोत्तम है :

योगिनामपि सर्वेषां मद्‌गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

गीता (६।४७)

योगयुक्तात्मा की पहचान

ऐसे आत्मसमर्पित अभ्यासी में सब प्राणियों के प्रति एकात्म-बुद्धि उत्पन्न हो जाती है, जिससे वह दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझकर उसकी निवृत्ति के लिए यथासाध्य यत्न करता है :

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

गीता (६।२९)

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

गीता (६।३०)

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥

गीता (६।३१)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

गीता (६।

प्राणायाम और लक्ष्ययोगादि के अभ्यास से चित्त के किसी प्र
एकाग्र होवे पर किंचित् चमत्कारिक शक्तियों की भी उपलब्धि सं
है ; किंतु न तो वह यथार्थ आध्यात्मिक योग है, न उससे शांति मि
है और न भगवत्प्राप्ति ही होती है, जो कि योग का मुख्य उद्दे
है ; बल्कि उससे उलटा व्याघात (बाधा) होता है। यथार्थ वै
की प्राप्ति तो केवल भगवद्भक्ति द्वारा ही होती है, जिसकी
आवश्यकता मनोनिग्रह के लिए भी है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ज्ञानयोग

कर्मयोग द्वारा चित्त की शुद्धि और अभ्यासयोग द्वारा मन के निगृहीत होने पर जब बुद्धि शान्त और शुद्ध होती है, तब साधक ज्ञान की प्राप्ति के योग्य होता है। शम—दमादिविशिष्ट साधक आचार्य द्वारा शास्त्र के सिद्धांत का श्रवण कर उसका मनन करता है। यह केवल बुद्धि द्वारा शास्त्र के सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त करना है। इसी को स्वाध्यायरूपी ज्ञान-यज्ञ भी रहते हैं :—

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

—गीता (४।२८)

ज्ञानयोग के स्तर

ज्ञानयोग के दो स्तर या भाग हैं। पहला स्तर है विचार और विवेक। सत्य से परिचिति के लिए प्रथमतः हमें यह जानना होगा कि असत्य क्या है? इसी का नाम विचार है। हम अपने सम्बन्ध में जितना जान सकते हैं उतना और किसी के सम्बन्ध में नहीं जान सकते। इसी से विचार अपने-आप से ही आरम्भ होता है। हमारे भीतर सत्य क्या है? क्या देह सद्वस्तु है? नहीं। तब क्या प्राण है? नहीं। मन हैं? नहीं। कारण ये सभी नश्वर, चंचल और क्षणिक हैं। सत्य का अर्थ है सत्, जो है, जो था और जो रहेगा, रहना ही जिसका धर्म है। जब हम इस प्रकार 'नेति-नेति' के द्वारा असत्प्रत्यय का पूर्णरूप से त्याग करते हैं, जब हम गम्भीरता के साथ यह अनुभूति प्राप्त करते हैं कि शरीर, प्राण और मन सत्य नहीं हैं, इनके परे कुछ है जो अव्यभिचारिणी सत्ता है, जो सत् है, जो सत्य

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है, तब हमारे भीतर विवेक का उदय होता है। विवेक एक प्र की स्वाभाविक प्रेरणा के द्वारा सत्य और मिथ्या का भेद स्पष्ट देता है। विचार मिथ्या प्रतीति का खंडन करता है और कि सद्वस्तु का आभास कराता है—केवल आभास, क्योंकि हमारे नि सच्चे 'अहं' का जो चैतन्य है, वह एकदम बुद्धिग्राह्य है ही नहीं। के द्वारा हम केवल उसके भाव को ही देख पाते हैं। इस भाव अनुभूति में अनुस्यूत करना ज्ञानयोग का द्वितीय स्तर है। इस में साधक को इस भाव के साथ परिचित होना होता है, मन-ही उसे गूंथना होता हैं और उसमें एकाग्र और तन्मय हो जाना है। इसी बात को ज्ञानयोगी की भाषा में यों कहेंगे कि सत्य आत्मा को प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन और निदिध्या करने की आवश्यकता है। सतत सत्यमंत्र का श्रवण, सत्य का उसकी संज्ञा और उसका परिचय ; अपनी विचारधारा को; म सर्वदा उसीमें नियोजित रखना; उसी में डूब जाना। इस प्रकार परम वस्तु के विषय में विचार करते-करते, केवल सत्-सत्ता की के अंदर निवास करते-करते क्रमशः हमारी समस्त बाह्य विनष्ट हो जाएगी, देह, प्राण और मन की क्रिया, यह मरीचिका दूर हो जाएगी और शाश्वत गुहास्थित आत्मा स जागरित हो उठेगा। उस समय साधक को अन्य किसी प्रका चेतना नहीं रहेगी, वह उस समय तुरीय अवस्था में स्थित हो ज शुद्ध, मुक्त, बुद्ध हो जाएगा। उस समय जगत् के ज्ञान से, इन्द्रि ज्ञान से निर्विशेष मुक्ति का लाभ कर वह कैवल्य को, ब्रह्मसि प्राप्त होगा।

सर्वोपरि अवदान !

ज्ञानयोग की सबसे बड़ी देन यही ब्रह्म, यही सच्चिदानन्द वह सत् जिसपर सारी सत्ता अवलम्बित है, वह चैतन्य जो ज्ञान का मूल है, वह आनन्द जो सुख-दुःख के अन्दर अन्तःस

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

फल्गु नदी के समान प्रवाहित होता रहता है। ज्ञानयोग मनुष्य को उसको उस गंभीरतम आत्मवस्तु का साक्षात्कार कराता है; जो सब प्रकार की सीमा, खण्डता और स्थूलता से परे एक अनिर्वचनीय पूर्णत्व एकत्व है, जो नित्य सत्य है, जो अपरिणामी, विरोधरहित, शाश्वत, सनातन है, जहाँ शोक नहीं, मोह नहीं, अतृप्ति नहीं, द्वन्द्व नहीं। परन्तु ज्ञानयोग का दुर्बल पक्ष यह है कि उसने मनुष्य को तुरीय, अतीन्द्रिय वस्तु के अन्दर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करते हुए मनुष्य के तीनों इहलोकों को, उसकी इन्द्रियों को एकदम तुच्छ, त्याज्य बना दिया है। ठीक है कि देह, प्राण और मन में असत्य, अनृत की लीला चल रही है, परन्तु ये पूर्णतया असत्य, अनृत नहीं है। इनको भी सच्चिदानन्द-तत्व के द्वारा पुनर्गठित किया जा सकता है, मूल सत्य के अनुसंधान-कार्य को समर्पित ज्ञानयोगी यह भूल ही गए हैं कि उसी सत्य की शाखा-प्रशाखा और फूल-फल से सुशोभित यह स्थूल दृश्य मूर्त्ति भी है, खण्ड को, सीमा को उन्होंने अवश्य ही दूर कर दिया है, परन्तु उसके साथ ही उन्होंने वैचित्र्य को भी खो दिया है।

एकीकरण बनाम समीकरण !

'एक' को उन्होंने पाया है, परन्तु 'एक' का ही जो यह बहुत्व है, उसे उन्होंने खो दिया है, उन्होंने एकीकरण को तो समझा है, पर समीकरण को नहीं समझा है। ज्ञानयोग ने एक और बहु, ब्रह्म और जगत्, अतीन्द्रिय और इन्द्रिय के बीच एक दुर्भेद्य प्राचीर खड़ी कर दी है।

भक्ति का उदग्र उत्स !

कर्म, अभ्यास, ज्ञान की त्रिवेणी में अवगाहन के बाद निर्मला बुद्धि में भक्ति योग का उत्स उद्गम होने लगता है जो योग-साधना के पथिकों को एक नयी मोड़ पर ला देता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

कर्म, अभ्यास और ज्ञानयोग की प्राप्ति होने पर साध
श्रीभगवान् के प्रति अनुराग उमड़ता है और तब वह भ
प्राप्ति की साक्षात् साधना का अनुसरण करने योग्य हो
जिसका वर्णन बारहवें अध्याय में ९वें श्लोक से १२वें तक है :

> अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
> अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥
>
> गीता (१

—यदि तू मन को मुझमें अचल स्थापन करने के लिए
नहीं है तो हे अर्जुन ! अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त
के लिए इच्छा कर ।

> अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
> मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥
>
> गीता (१२

—यदि तू उपर्युक्त अभ्यास में भी असमर्थ है तो
मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो जा । इस प्रकार
निमित कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि
प्राप्त होगा ।

> अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
> सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥
>
> गीता (१

—यदि मेरी प्राप्तिरूप योग के आश्रित होकर उपर्युक्त
को करने में भी तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदि पर विजय
करनेवाला होकर सब कर्मों के फल का त्याग कर ।

> श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
> ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥
>
> गीता (१

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

—मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है। यहाँ सात साधनाओं का वर्णन इस प्रकार है—

श्रीभगवान् ने इसको सबसे नीचे की अवस्था माना है; क्योंकि उनके निमित्त साक्षात् कर्म में सबसे पहले यही है। इस अवस्था में श्रीभगवान् के योग का आश्रय लेकर केवल श्रीभगवान् के निमित्त कर्मफल का त्याग किया जाता है!

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥

गीता (१२।११)

—यदि मेरी प्राप्तिरूप योग के आश्रित होकर उपर्युक्त साधन करने में तू असमर्थ है तो मन-बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करनेवाला होकर सब कर्मों के फल का त्याग कर।

कर्म और भक्ति का मार्मिक अन्तर

कर्मयोग के कर्म और इस भक्ति के कर्म में बड़ा भेद है। कर्मयोग का उद्देश्य केवल चित्तशुद्धि है, उसका मूल कारण वह भगवत्प्रेम नहीं है, जो वहाँ बीजरूप में रहता है। किंतु भक्तियोग की इस अवस्था में साधक के हृदय में भगवत्प्रेम के अंकुरित होने के कारण वह प्रत्येक कर्म करते समय श्रीभगवान् का स्मरण करता है और कर्म करने में उसका मुख्योद्देश्य उसके फल का उन्हीं के चरण-कमलों में अर्पण करना होता है :

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

गीता (४।२४)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म हैं और हव[illegible] जाने योग्य द्रव्य भी ब्रह्म हैं तथा ब्रह्मरूप कर्त्ता के द्वारा [illegible] अग्नि में आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है—उस ब्रह्मकर्म में [illegible] रहने वाले योगी द्वारा प्राप्त किए जाने योग्य फल भी ब्रह्म [illegible]

भक्ति-योग में अवस्था भेद

इस सतत स्मरण द्वारा (गीता ८।७) वह श्रीभगवान् के सा[illegible] अर्थात् क्रमशः उनके सन्निकटस्थ होता जाता है और इसे ही [illegible] ने 'मद्योगमाश्रितः' कहा है (गीता १२।११)। यहाँ वह केवल [illegible] धर्मानुकूल कर्मों को करता है, जिनका फल श्री भगवान् के प्रति[illegible] करने योग्य होता है। उनके प्रतिकूल कदापि नहीं करता।

दूसरी अवस्था में कर्म ही श्रीभगवान् के निमित्त क्रिया[illegible] (गीता १२।१०) यानी फल की जगह स्वय कर्म ही अर्पित हो[illegible]

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥
गीता [illegible]

मुझ अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्त द्वारा सम्पूर्ण [illegible] मुझमें अर्पण करके आशारहित, ममतारहित और सन्तापरहि[illegible] युद्ध कर।

कर्म संन्यास दासता नहीं

यह दासभाव के सदृश है, किन्तु इसमें श्रीभगवान् अपने [illegible] प्रभु न होकर परमलक्ष्य बन जाते हैं, जिनको प्रेमपूरित हृदय[illegible] पूर्ण सेवा द्वारा प्राप्त करना ही जीवन का एकमात्र [illegible] जाता है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥
गीता [illegible]

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

—हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे ही लिए सम्पूर्ण कर्त्तव्यकर्मों को करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियों में वैरभाव से रहित है—वह अनन्यभक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।

अनन्यभक्ति का मार्ग

इस स्थिति में साधक अपने गृह, परिवार, वैभव, शरीर, मन, बुद्धि और क्रियाशक्ति आदि के साथ दृश्यमात्र को श्रीभगवान् की वस्तु मानता है और केवल उन्हीं के निमित्त उन सबका व्यवहार करता है, स्वार्थ के लिए कदापि नहीं करता। प्रत्येक कर्म करते समय इस भाव को ध्यान में रखकर वह निरन्तर श्रीभगवान् का स्मरण करता रहता है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

गीता (८।७)

—इसलिए हे अर्जुन ! तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किए हुए मन-बुद्धि युक्त होकर तू निःसंदेह मुझको ही प्राप्त होगा।

धर्मरक्षा=लोकहित

वह प्रत्येक कर्म—यहाँ तक कि भोजन तक भी श्रीभगवान् के पदार्थों को (शरीर, परिवार आदि की) रक्षा के निमित्त आवश्यक समझकर करता है और उन कर्मों को वह श्रीभगवान् का ही कर्म समझता है। इसी तरह यज्ञ, दान, तप आदि कर्म भी लोक-हित के लिए श्रीभगवान् के कार्य समझकर करता है; क्योंकि वह जानता है कि धर्म की रक्षा श्रीभगवान् का मुख्य और परम प्रिय कार्य है, जिसके लिए वे स्वयं अवतार लेते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
× × × ×
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

गीता

—हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृ है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकाररू के सम्मुख प्रकट होता हूँ।

—साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए; पाप-कर्म का विनाश करने के लिए और धर्म की अच्छी तरह से स्थाप के लिए मैं युग-युग में प्रकट हुआ करता हूँ।

त्रिविध पावन कर्म

यज्ञ, दान, तप—ये तीनों ही मानव-समाज को पवित्र हैं। इस कर्मार्पण भाव से कर्म करने पर नित्य व्यवहार स्वाभाविक कर्मों का सम्पादन श्रीभगवान् की पूजा हो जाती अवस्था में साधक के लिए भगवत्-परायण होना, चित्त श्रीभगवान् में समर्पित रखना और समबुद्धि होना आवश्यक समय वह नीचे-ऊँचे, छोटे-बड़े सभी को श्रीभगवान् का अं कर सभी को आत्मदृष्टि से एक समान समझता है और वह लोक-हितकर कर्म को श्रीभगवान् का मुख्य प्रियकार्य उसमें विशेष रूप से प्रवृत्त रहता है। इस भाव से कर्म करने से विपरीत या अनुपयुक्त परिणाम होने पर भी वह साधन असंग और कर्मार्पण-भाव के कारण पाप का भागी नहीं हो समझता है कि उसमें जो क्रिया आदि शक्तियाँ हैं वे सभी की हैं। वह तो कर्म करने में केवल निमित्तमात्र बनने करता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अभ्यास और अध्यास

अभ्यास-योग के अभ्यास और इस भक्ति के अभ्यास में यह भेद कि पहले का उद्देश्य चित्त की एकाग्रता है, जिसके निमित्त किसी च्छित वस्तु या स्थानविशेष पर चित्त संलग्न किया जाता है। तु यहाँ पर इसका लक्ष्य केवल भगवत्-प्राप्ति है और वही इसका षय भी है :

> अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
> अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥

गीता (१२।९)

—यदि तू मन को मुझमें अचल स्थापन करने के लिए समर्थ हीं है तो हे अर्जुन! अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त होने लिए इच्छा कर।

तज्जपः, तदर्थ भावना

श्रीभगवान् के दिव्यनाम (मंत्र) के जप और हृदयकमल में उनकी य-साकार-मूर्त्ति को चित्रितकर उसमें श्रद्धा तथा अनन्यभाव से त को एकाग्र संलग्न करना ही यहाँ का उपासनारूपी अभ्यास है। अभ्यास में प्रवृत्त होनेवाले का श्रीभगवान् शीघ्र उद्धार करते हैं। स साधक का मन जिस इष्ट देवता में स्वभावतः अनुरक्त हो, उसे ी की उपासना करनी चाहिए। इस उपासना के लिए उपास्य का हर चित्र रखना आवश्यक है, जिसके अनुसार हृदय में भी पैर ारंभ कर क्रमशः ऊपर के समस्त अंगों को एक सुन्दर मूर्त्ति यी जा सके और फिर उस आभ्यान्तरिक हृदयस्थ सांगोपांग मूर्त्ति चत्त सन्निविष्ट किया जा सके। उपास्य की हृदयस्थ मूर्त्ति पर के सनिविष्ट हो जाने पर अन्य किसी भी भावना को चित्त में आने देना चाहिए और जब चित्त अन्यत्र चला जाए (जो प्रारंभ वश्य होता है) तब उसको शीघ्र वहाँ से फिर उसी उपास्य में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

लौटाकर संलग्न करना चाहिए। इस प्रकार बार-बार के अभ्यास से चित्त उपास्य में संलग्न हो जाएगा। यह अभ्यास नियमपूर्वक नियत समय पर करना चाहिए। इसके लिए समय प्रातः और सायंकाल है।

ज्ञान-ज्योति का उदय

उपर्युक्त उपासनारूपी अभ्यास के फलस्वरूप साधक में ज्ञान की ज्योति जगती है। इस समय का यह ज्ञान केवल बुद्धि नहीं रहता, किन्तु उस साधक को अपने में सद्गुणों का विकास पड़ता है, जिनका उल्लेख तेरहवें अध्याय के निम्न श्लोकों में के नाम से किया गया है—

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥
गीता

—श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार न सताना, क्षमाभाव वाणी आदि की सरलता, श्रद्धा-भक्ति सहित गुरु की सेवा, भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता और मन-इन्द्रिय शरीर का निग्रह।

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥
गीता

इस लोक और परलोक के संपूर्ण भागों में आसक्ति का और अहंकार का भी अभाव; जन्म, मृत्यु, जरा और रोग दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना।

आसक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
गीता

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

—पुत्र, स्त्री, घर और धन आदि में आसक्ति का अभाव; ममता न होना तथा प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

गीता (१३।१०)

—मुझ परमेश्वर में अनन्य योग के द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति तथा एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव और विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय में प्रेम का न होना।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् :
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

गीता (१३।११)

—अध्यात्मज्ञान में नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को ही देखना—यह सब ज्ञान है; और जो इसके विपरीत है वह अज्ञान है—ऐसा कहा है।

दिव्यालोक में आत्मदर्शन

इस अवस्था में कर्म और चित्त की पूर्ण शुद्धि होने के कारण यत्न, श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा प्रकृति; पुरुष, ज्ञेय आदि का ज्ञान उसको साधारण रीति से और क्षेत्र—क्षेत्रज्ञ का ज्ञान विशेष रीति से प्राप्त हो जाता है। ऐसे साधक की स्थिति अनवरत निदिध्यासन द्वारा कारण-शरीर के अभिज्ञानी 'प्राज्ञ' जीवात्मा तक हो जाती है, उसको यह भी ज्ञान हो जाता है कि कारण-शरीर के ऊपर तुरीय-चैतन्यरूप श्रीभगवान् का परम प्रकाश है, वह गायत्री है। इसी की सहायता से ही वह वहाँ से ऊपर उठकर और माया का अतिक्रमण कर श्रीभगवान् को प्राप्त कर लेगा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gr

ध्यान की यह अवस्था ज्ञान (शास्त्र-पाण्डित्य) से ऊँची है

> श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
> ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥
>
> गीता (१

—मर्म को न जानकर किए हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है ; क्योंकि त्याग से तत्काल ही शांति प्राप्त होती है।

इसी का नाम 'ध्यान-योग' भी है !

> विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
> ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
>
> गीता (१

ध्यानयोग अन्तिम सीढ़ी

यह चित्त या मस्तिष्क की वृत्ति अथवा कार्य न होकर हृ कार्य है। श्रीभगवान् के निमित्त त्याग, उनकी अहैतुकी और सद्गुणयुक्त ज्ञान के फलस्वरूप हृदय के पवित्र होने से उ परम प्रेम का संचार होता है, जो श्रीभगवान् की ओर प्रवाहित होता रहता है जिससे ध्याता तुरंत अपने ध्येय को कमल में ही साक्षात् देख पाता है और इस दिव्य दर्शन को वह उनके श्रीचरणकमलों में प्रवेश कर जाता है और तद दुर्लभ मकरन्द का रसास्वादन कर कृतार्थ होता है। पहले फिर दर्शन और तब प्रवेश—यही क्रम है। इस अवस्था में ही और जब भी अपने ध्येय का ध्यान करता है, त्यों-ही हृदय में प्रत्यक्ष हो जाते हैं। अब ध्याता-ध्येय, नाम-नामी देवता की एकता प्रत्यक्ष हो जाती है। यही आत्मार्पण भाव अवस्था में साधक भक्त को श्रीभगवान् के विश्वरूप का द

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

है, जिससे वह श्रीभगवान् को सर्वत्र प्रत्यक्ष व्याप्त देखता है और इसी से वह सभी को श्रीभगवान् का रूप जानता है, जो परम दुर्लभ अवस्था है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

गीता (७।१९)

—बहुत जन्मों के अंत के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सबकुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यंत दुर्लभ है।

इस समय संसार के हितार्थ श्रीभगवान् का तेजोवितरण करने के लिए वह केन्द्र बन जाता है। जो तेज उसके हृदय से प्रवाहित होकर संसार का परम कल्याण करता है, ऐसे साधक के जीवन का व्रत ही परोपकार हो जाता है।

भीतर-बाहर सर्वत्र ही भगवान्

साधारण लोगों के अभ्यंतर में श्रीभगवान् द्रष्टा अर्थात् साक्षी की भाँति रहते हैं। जो अनन्य भाव से श्रीभगवान् में नियुक्त रहकर उनकी उपासना करते हैं, उसके लिए वे योगक्षेमवाहक हैं :

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

गीता (९।२२)

—जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरंतर चिंतन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य-निरंतर मेरा चिंतन करनेवाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

जो भगवान् में तन्मय होकर उपदेश, यशोवर्णन आदि द्वारा दूसरों को भी ईश्वरोन्मुख करते हैं—श्रीभगवान् उनके अभ्यंतर में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

ज्ञान को प्रज्वलित कर अज्ञान-तिमिर का नाश कर देते हैं। ऊपर की अवस्था है। ऐसे भक्त के वे कर्मफलभोक्ता हो अर्थात् उसके त्यागरूपी यज्ञ के फल को वे संसार के हितार्थ भोगते हैं :

उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः।
परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः॥
गीता (१३

—इस देह में स्थित यह आतमा वास्तव में परमात्मा है, वही साक्षी होने से उपद्रष्टा और यथार्थ सम्मति देनेवाला है, अनुमन्ता, सबका धारण-पोषण करनेवाला होने से भर्ता, से भोक्ता, ब्रह्मा आदि का भी स्वामी होने से महेश्वर और सच्चिदानन्दघन होने से परमात्मा—ऐसा कहा गया है।

मोक्ष नहीं,—मोक्ष-संन्यास

यह ध्यान से भी उच्चतर है। इस कर्मफल-त्याग में कर्म-फल का नहीं, मोक्ष तक का त्याग इष्ट है और इसी गीता के अन्तिम अध्याय का नाम 'मोक्ष-संन्यास-योग' है। समय उस भक्त को मोक्ष की प्राप्ति का पूर्ण अधिकार होता परन्तु वह सदा श्रीभगवान् की सेवा में संयुक्त रहने के सामने को भी अति सूक्ष्म समझकर उसका सहर्ष त्याग कर देता है। अवस्था में उसे परमभक्ति की उपलब्धि होती है और वह आत्मा को श्रीभगवान् में अर्पित कर देता है जो सृष्टि का कारण-स्वरूप उनका आदि संकल्प है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
गीता (१८

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

—संपूर्ण धर्मों को अर्थात् संपूर्ण कर्त्तव्यकर्मों को मुझमें त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर।

शरणागतियोग से ही परिपूर्ण आनन्द की प्राप्ति

मोक्ष-त्याग द्वारा आत्मसमर्पण करने से ही यथार्थ शांति मिलती है, अन्यथा नहीं। क्योंकि इस आत्म-समर्पण द्वारा श्रीभगवान् के सृष्टि रचने के आदि-संकल्प—एकोऽहं बहु स्याम—मैं एक हूँ अनेक हो जाऊँ—की पूर्त्ति होती है। यही मोक्षत्याग के अनन्तर की परम शांति है। इसे प्राप्त कर साधक कृत—कृत्य हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalg

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

चतुर्थ सोपान

'गणेशगीता' में योग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G
Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पूर्व-पीठिका

'गणेश-गीता' 'गणेशपुराण' के उत्तरार्ध (क्रीड़ा खण्ड) का एक महत्त्वपूर्ण अंश है: द्वापर में सिन्दूरासुर के क्रूरतम शासन में त्रैलोक्य विकल-विह्वल हो गया था। देवता और ऋषि आदि तपस्वी गिरि-गुफाओं और अरण्यों में छिप गए थे। उस समय परम-प्रभु विनायक गौरी के यहाँ प्रकट हुए। अपने दिए वचन के अनुसार उन्होंने भगवान् शिव से कहा कि 'आप मुझे राजा वरेण्य की सद्यः—प्रसूता सहधर्मिणी पुष्पिका के समीप पहुँचा दें।' आशुतोष शिव की आज्ञा से नन्दी उन्हें वरेण्य-पत्नी पुष्पिका के प्रसूति-गृह में रख आए थे। वे परमप्रभु अरुणवर्ण के थे। उनकी चार भुजाएँ थीं और उनका वाहन मूषक था। उनका नाम 'गजानन' प्रसिद्ध हुआ।

महर्षि पराशर एवं उनकी सती धर्मपत्नी वत्सला ने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उन परमप्रभु गजानन का पालन किया। उन दयामय ने महादैत्य सिन्दूर को मुक्ति प्रदान कर त्रैलोक्य की भयानक विपत्ति का निवारण किया।

सिन्दूरासुर का प्राणांत कर अपने अवतार के प्रयोजन को पूर्ण करने के उपरान्त इहलोक से प्रयाण करते समय श्री गणेशजी ने अपने पिता वरेण्य को अमृतमय उपदेश दिया था। वह 'गणेश-गीता' के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तावना में लिखा है कि 'जब श्री गणेश जी ने सिन्दूरासुर का वध किया, तब देवताओं तथा मुनियों ने उनकी स्तुति की। तब राजा वरेण्य ने पहचाना कि यह मेरा ही त्यक्त पुत्र है, जिसने यह दुष्कर कार्य सम्पन्न किया है।' उन्होंने घोर पश्चाताप किया और नम्रतापूर्वक उनसे प्रार्थना की कि आप मुझे संसार से मुक्ति का मंगल-पथ दिखलाएँ। गणेशजी ने राजा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

को आशीर्वाद दिया। उनके समस्त संशयों का क्षय किया तथा अपने विश्वरूप के दर्शन दिए। तत्पश्चात् राजा वरेण्य ने अपना राज-पाट त्यागकर जंगल में जाकर तप किया और गणेशजी में होकर परमपद को प्राप्त किया।

परमतत्त्व की अनुभूति उद्देश्य

'गणेश-गीता' में ग्यारह अध्याय हैं, जो 'गणेशपुराण' के १३ अध्याय से १४२वें अध्याय तक विस्तृत हैं। गणेशगीता के उप और उपसंहार से सुस्पष्ट है कि यह प्रथमतः योगसम्बन्धी ग्रन्थ जिसमें चरमतत्त्व की अनुभूति की ओर ले जानेवाले अनुशासन नि हैं। प्रत्येक अध्याय के अन्त में पुष्पिका में कहा गया है कि 'ग गीता में उपनिषदों के अर्थ गर्भित हैं और यह एक शास्त्र है, जो रूपी अमृत का अनुसंधान करता है।'

इस गीता की विशेषता

'गणेशगीता' पर श्रीमद्भगवद्गीता का गहन प्रभाव परिल होता है। किंतु दोनों के उपदेशों में विभिन्नता है; क्योंकि दोनों लक्ष्य अलग-अलग हैं। गीता में अर्जुन को युद्धरत करने के उत्साहित किया गया था, यद्यपि उसने अपने सगे-सम्बन्धियों हत्या की अपेक्षा सांसारिक जीवन से ही विराम चाहा था। गणेशगीता में राजा वरेण्य ने अपना राजपाट त्याग दिया और में जाकर गणेशगीता—श्रवण कर मुक्ति प्राप्त की।

'गणेशगीता' का उद्देश्य योग की व्याख्या करना है। ग्रन्थ प्रारम्भ में राजा वरेण्य ने श्री गणेशजी से योग का विषय सम की प्रार्थना की है। गणेशजी कहते हैं कि 'राजन्! मैं योगा पूर्ण गीता कहूँगा; तुम सुनो'—

'शृणु गीतां प्रवक्ष्यामि योगामृतमयीं नृप।'

(गणेशगीता

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

उपसंहार के श्लोकों में गणेशजी कहते हैं—'इस प्रकार मैंने कृपा करके तुम्हें विस्तारपूर्वक सांगोपांग योगशास्त्र का उपदेश दिया, जो योग अनादि-सिद्ध है तथा जिसे मैंने तुम्हारे सिवा और किसी के सामने प्रकट नहीं किया है, मेरे द्वारा कहे गए इस योग का तुम अभ्यास करो। इसे तुम गुप्त ही रखना; इससे तुम्हें अनुपम सिद्धि प्राप्त होगी।'

ब्रह्मानन्द की उपलब्धि ही योग

प्रारम्भिक अध्याय में निषेधात्मक रूप से योग की व्याख्या की गयी है। जैसे—'श्री सम्पन्न होना योग नहीं, राजत्व की प्राप्ति योग नहीं, देवता के रूप में स्वर्ग में स्थान पाना योग नहीं अथवा अष्ट-सिद्धियों की प्राप्ति भी योग नहीं। योग है—आत्मा का ब्रह्म में विलीन हो जाना; अपने भीतर ब्रह्म का अनुभव करना। ऐसा मनुष्य शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और मुझ गणेश में अभेदबुद्धि रखता है तथा मुझको सर्वत्र और सब में देखता है।' (गणेशगीता १।६-२१)

गणेशगीता ब्रह्मानुभूति की साधना की राह दिखलाती है और इसको 'योग' के नाम से पुकारती है; चाहे वह ज्ञानयोग हो या कर्मयोग अथवा भक्तियोग। गणेशगीता (अध्याय ३।४७) में लिखा है कि 'ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर परम मोक्ष को प्राप्त करता है।' आगे (अध्याय ४।१५,२१) में योग की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—'जिसका आत्मसम्बन्धी अज्ञान विशुद्ध विवेक के द्वारा प्राप्त ज्ञान से नष्ट हो गया है, उसे पूर्णब्रह्म की अनुभूति होती है। वह अपने मन और इन्द्रियों को पूर्णतः वश में कर लेता है तथा सारे विकारों से मुक्त होकर अपने आत्मा में ही रमण करता हुआ आनन्द प्राप्त करता है।' यथा—

विवेकेनात्मनोऽज्ञानं येषां नाशितमात्मना।
तेषां विकाशमायाति ज्ञानमादित्यवत् परम्॥
आनन्दमश्नुतेऽसक्तः स्वात्मारामो निजात्मनि॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

आगे चलकर इसी अध्याय के २५ से ३४वें श्लोक तक राज... का वर्णन है।

योग और संन्यास दोनों समान

राजयोग की व्याख्या करते हुए गणेश जीकहते हैं कि श्रेष्ठ प्रा... याम छत्तीस मात्रा का होता है। इस प्रकार के बारह प्राणा... से धारणा होती है और दो धारणाओं से योग होता है।" त... अन्त में कहा है कि 'योग और संन्यास—दोनों समान फल प्र... करते हैं तथा जो मुझे त्रिलोक के अधिपति तथा विभुरूप में जा... है, वह मुक्ति प्राप्त करता है'—

> एवं योगश्च सन्यासः समानफलदायिनौ ॥
> जन्तूनां हितकर्त्तारं कर्मणां फलदायिनम्।
> मां ज्ञात्वा मुक्तिमाप्नोति त्रैलोक्यस्येश्वरं विभुम् ॥
> (गणेशगीता ४।३...

हम पूर्णता के लक्ष्य को ज्ञान के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं... लक्ष्य है—तात्त्विकी आध्यात्मिक प्रज्ञा। 'गणेशगीता' श्री ग... को परब्रह्म, अविकारी, अप्रमेय, अपरिणामी, अव्यक्त, सर्व... आनन्दस्वरूप परतत्त्व मानती है—

> अविकारोऽप्रमेयोऽहमव्यक्तो विश्वगोऽव्ययः।
> अहमेव परं ब्रह्माव्ययानन्दात्मकं नृप ॥
> (गणेशगीता १।२...

सर्वदेवतादात्म्य

श्री गणेशजी का ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवों के... तादात्मय है। वे एक होकर अनेक रूपों में दीखते हैं (एक... भासते)। वे जगत् में अन्तर्निहित हैं और सब पदार्थों में...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

हैं। वे अजन्मा हैं, अव्यक्त हैं, स्थावर-जंगम का आत्मा हैं, अनादि और परमेश्वर हैं—

अहमेव परो ब्रह्मा महारुद्रोऽहमेव च।
अहमेव जगत्सर्वं स्थावरं जंगमं च यत्॥
अजोऽव्ययोऽहं भूतात्मानादिरीश्वर एव च।

(गणेशगीता ३।८-९)

तत्त्व अर्थात् आत्मा के अस्तित्व का अनुभूतिविषयक यह ज्ञान इस योग की नियमित साधना के द्वारा हृदयंगम होता है। यद्यपि 'ज्ञान' शब्द विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है, तथापि ज्ञानयोग पूर्णत्व का बौद्धिक मार्ग नहीं है; बल्कि यह विशुद्ध लोकातीत आध्यात्मिक प्रज्ञा है। यही आध्यात्मिक प्रज्ञा अग्नि के समान सब प्रकार के कर्मों को क्षणभर में दग्ध कर देती है—

'विविधान्यपि कर्माणि ज्ञानाग्निर्दहति क्षणात्।

(गणेशगीता ३।४५)

प्रज्ञा-यज्ञ

यह परम श्रेष्ठ यज्ञ माना गया है। यह आध्यात्मिक ज्ञान ही सर्वोच्च स्वर्ग अथवा मोक्षका साधन है, जिसमें सारे कर्म विलीन और दग्ध हो जाते हैं—

सर्वेषां भूप यज्ञानां ज्ञानयज्ञः परो मतः।
अखिलं लीयते कर्म ज्ञाने मोक्षस्य साधने॥

(गणेशगीता ३।३९)

कर्मयोग

कर्म-विहीन जीवन एक अकल्पनीय बात है। प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार विवश होकर कुछ-न-कुछ काम करता है। (गणेशगीता २।४) किसी अभिलषित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो कर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

किए जाते हैं, वे बंधन के हेतु हैं। परन्तु जो कर्म बिना आशं
अथवा फलाभिलाषा—रहित होकर किए जाते हैं, वे चित्त को
करते हैं। बुद्धिमान पुरुष केवल कर्मों के न्यास को 'सं
नहीं कहते—

'केवलं कर्मणां न्यासं संन्यासं न विदुर्बुधाः।'

(गणेशगीता

कर्मों से प्राप्त होनेवाले फल की आशा को त्यागकर जो
किए जाते हैं, वे अकर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ होते हैं। जब कर्म भग
र्पित नहीं होता, तब वह बंधनकारक होता है। अतएव मनुष्
इच्छाओं और आसक्तियों से ऊपर उठकर कर्म करते रहना चा

(गणेशगीता

कर्मफलासंग त्याग ही सच्चा योग

योग के जाननेवाले चित्त की शुद्धि के लिए शारीरिक क
की आशा का त्याग करते हैं और अपनें-आपको वाचिक, बौ
तथा मानसिक कार्यों में लगाए रखते हैं—

कायिकं वाचिकं बौद्धमैन्द्रियं मानसं तथा।
त्यक्त्वाऽऽशां कर्म कुर्वन्ति योगज्ञाश्चित्तशुद्धये॥

(गणेशगीता

यहाँ यह ध्यान में रखनें की बात है कि श्री शंकराचा
ज्ञानयोग के कट्टर उपदेष्टा नें भी चित्त की शुद्धि के लिए नि
कर्म की क्षमता को स्वीकार किया है।

ज्ञानेनैव मोक्षः सिध्यति, किंतु, तदेव ज्ञानं सत्त्वशुद्धि
नोत्पद्यते........तस्मात् सत्त्वशुद्ध्यर्थं सर्वेश्वरमुद्दिश्य
वाङ्मनः कायलक्षणानि श्रौतस्मार्त्तानि कार्याणि समाचरेत्।

(सनत्सुजाती

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। परन्तु वह ज्ञान हृदय की शुद्धि के बिना उत्पन्न नहीं होता। अतएव हृदय की शुद्धि के लिए वेद और स्मृतियों में बतलाए गए सारे वाचिक, मानसिक और कायिक कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करते रहना चाहिए।'

लोकसंग्रहार्थ कर्माचरण

'गणेशगीता' ज्ञान की प्राप्ति हो जाने के बाद भी लोकसंग्रह के लिए कर्म करते रहने का आदेश देती है—

'लोकानां संग्रहायैतद् विद्वान् कुर्यादसक्तधीः ॥

(गणेशगीता २।२५)

सारांश यह है कि यदि एक ज्ञानी पुरुष अहंता और ममता से विच्छिन्न होने की भावना की साधना करता है और अपने दैनिक कार्यों को तथा विशिष्ट कर्मों को प्रभु को समर्पित करता है तो वह परम गति को प्राप्त करता है—

नित्यं नैमित्तिकं तस्मान्मयि कर्मार्पयेद् बुधः।
त्यक्त्वाहंममताबुद्धिं परां गतिमवाप्नुयात् ॥

(गणेशगीता २।३०)

भगवान् गणेशजी अनुग्रह करनेवाले देवता हैं। वे आत्मविश्वास, प्रेम और भक्तिपूर्वक आत्मसमर्पण के लिए साधक को अनुप्राणित करते हैं। वे तार्किकों की आध्यात्मिक खींचतान के परे हैं। यद्यपि योगी ज्ञानी से, कर्मनिष्ठ से और तपोनिष्ठ से भी श्रेष्ठ होता है, परन्तु गणेशजी के मत से उन सबमें मेरा भक्त पुरुष ही श्रेष्ठतम है—

ज्ञाननिष्ठात् तपोनिष्ठात् कर्मनिष्ठान्नराधिप।
श्रेष्ठो योगी श्रेष्ठतमो भक्तिमान् मयि तेषु च ॥

(गणेशगीता ५।२७)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

सगुणोपासना के उपयोग

'गणेशगीता' देवमूर्ति को पुष्पों, फलों और भोजन के पदार्थ निवेदन करके, धूप-दीप आदि प्रदान कराके सगुण भक्ति-पूजा पर विशेष जोर देती है। (गणेशगीता ७।६-१६)

यह नवधा भक्ति के मार्ग का उपदेश करती है; परन्तु मानसिक पूजा को अधिक महत्त्वपूर्ण मानती है—

'त्रिविधास्वपि पूजासु श्रेयसी मानसी मता।'

(गणेशगीता ७।

भक्ति से वासना-विजय

भक्ति मनुष्य को वासना की प्रबलता पर विजय प्राप्त कराने में सहायक होती है। इस आत्मसंयम से वह ज्ञान उत्पन्न होता है जो साधक को परम गति प्रदान करता है। भक्त भगवान् के लिए व्रत धारण करता है, सारे कर्म प्रभु के प्रीत्यर्थ करता है। सारी वासनाओं और मत्सरता का त्याग करता है, सबको समभाव से देखता है। इस प्रकार वह प्रभु के साथ एकत्व को प्राप्त हो जाता है—

मद्भक्तो मत्परः सर्वसंगहीनो मदर्थकृत्।
निष्क्रोधः सर्वभूतेषु समो मामेति भूभुज॥

(गणेशगीता ८

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पंचम सोपान

पातंजल योग

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-(

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jal

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

योग की अनेक शाखता

यद्यपि पुराकाल से ही योग की अनेक शाखाएँ प्रचलित हैं और श्रीमद्भगवद्गीता में भी राजयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि का उल्लेख स्पष्ट है; पर देशी-विदेशी सभी विद्वान एकमत से स्वीकारते हैं कि अष्टांग योग के आदि उन्नेता महर्षि पतञ्जलि मुनि हैं और उन्हीं की स्थापनाओं के आधार पर योग की विविध विधियाँ और शाखाएँ पल्लवित होती रही हैं। बहुतेरे विद्वान तो 'योग' का अर्थ पतञ्जलि का 'योग-दर्शन' ही बतलाते हैं।

विद्वानों के अनुसार 'योगसूत्र' के रचयिता, 'व्याकरण-महाभाष्य' के प्रणेता तथा 'चरकसंहिता' के निर्माता एक ही व्यक्ति 'पतञ्जलि' हैं—

'योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।
योऽपाकरोत् तं प्रवरं मुनीनां 'पतञ्जलिं' प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥'

'पतञ्जलि' का जन्म ईसा से पूर्व दूसरी सदी में हुआ था और कहते हैं कि वह 'शेषनाग' के अवतार थे। वैयाकरणों की परम्परा में ऐसी प्रसिद्धि है कि 'शेषनाग' का रूप धारण कर इन्होंने 'महाभाष्य' रचा था और शिष्यों को पढ़ाया था।

योगसूत्र की मौलिकता

यही 'योगसूत्र' योगशास्त्र का मूल ग्रंथ है। इसमें चार पाद हैं, जिनमें सब मिलाकर १९५ सूत्र हैं। 'समाधिपाद' में ५५, 'साधनपाद' में ५१, 'विभूतिपाद' में ५५ और 'कैवल्यपाद' में ३४ सूत्र हैं।

समाधिपाद में समाधि या योग-सिद्धांत की विवेचना है। यह विवेचना इस पाद के साथ ही समाप्त नहीं होती; दूसरे पाद मेंभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

जारी रहती है। दूसरे पाद का विषय योग-साधन है, परन्तु साधनों
वर्णन २९वें सूत्र से आरम्भ होता है। दूसरे पाद में योग के आठ
में केवल पाँच अंगों का वर्णन है, और शेष तीन अंग तीसरे पाद के
रखे जाते हैं। तीसरे पाद का प्रमुख विषय वे विभूतियाँ हैं, जो
साधनों की सिद्धि के उपरांत साधक को प्राप्त होती हैं। विभूति
लिए 'भूति', 'सिद्धि' और 'ऐश्वर्य' का भी प्रयोग किया जाता है।
विभूतियों का विषय चौथे पाद में भी जारी रहता है; इसके
विषय कैवल्य को पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। इस प्रकार
का क्रम बहुत सुसंगत नहीं है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सांख्य——और——योग

भारतीय दर्शन की शाखाओं में, सांख्य और योग—एक जोड़ा बनाते हैं। इनका संबध इतना सघन है कि कुछ विद्वान तो सांख्य और योग के स्थान में 'सांख्य-योग' का ही प्रयोग करते हैं। उनकी सम्मति में ये दोनों एक ही सिद्धांत के व्याख्यान हैं; एक में एक प्रमुख है, दूसरे में दूसरा पक्ष प्रमुख है। भगवद्गीता में कहा है कि बाल-बुद्धि पुरुष ही सांख्य और योग को पृथक् समझते हैं। **'सांख्ययोगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।'** योगसूत्र पर सर्वाधिक समर्थ भाष्य व्यासदेव का है, और व्यास ने भाष्य का नाम 'सांख्य-प्रवचन भाष्य' रखा है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सांख्य और योग एक दूसरे के बहुत निकट हैं; परन्तु उनमें कुछ भेद भी हैं। यह कहना कठिन है कि आरम्भ में सिद्धांत एक था, और विकास-क्रम में यह दो शाखाओं में परिणत हो गया या विकास दो भिन्न सिद्धान्तों को एक दूसरे के निकट ले आया।

सांख्य भी योगाधृत

सांख्यशास्त्र में तो योग के बिना कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। परमाण के तुल्य 'पंचभूतों' से लेकर 'महत्' तत्त्व पर्यन्त सभी तत्त्व मनोवैज्ञानिक हैं। 'चेतन' (चित्) और 'प्रकृति' भी इतने सूक्ष्म हैं कि बिना योग की सहायता से उनका आभास भी नहीं मिल सकता। सभी मनोवैज्ञानिक तत्त्व स्थूलदृष्टि से अगोचर हैं और इनके ज्ञान के लिए चित्त-वृत्ति के व्यापारों का विचार तो योगशास्त्र में ही है। सांख्य के तत्त्वों का प्रत्यक्ष एक प्रकार से स्थूल-दृष्टि वालों के लिए 'योगज प्रत्यक्ष' है। सांख्य की भूमि में सभी व्यापार 'बुद्धि' या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

'महत्' तत्त्व के द्वारा होते हैं और बुद्धि का वास्तविक ज्ञान 'योग' से ही होता है। सांख्य परिणामवादी शास्त्र है। सत्त्व, रजस् और तमस् के परिणाम से जगत् चलता है और चित्त की निरोधावस्था में भी परिणाम होता रहता है। इस परिणाम का विचार विशेष रूप से योगशास्त्र में ही हमें मिलता है। अतएव योगशास्त्र के बिना सांख्य का ज्ञान भी नहीं हो सकता। सांख्य और योग दोनों के समन्वय से चैत्तिक पदार्थों का ज्ञान होता है।

सांख्य-विवेचन : योग अनुशासन !

जिस रूप में दोनों दर्शन वर्तमान में विद्यमान हैं, योग सांख्य का पूरक दीखता है। सांख्य के अनुसार तीन प्रकार के दुःखों (आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक) की अत्यंत निवृत्ति मनुष्य का लक्ष्य है। दुःख का कारण यह है कि मनुष्य, पुरुष और प्रकृति के संसर्ग में, बाहरी घटनाओं को आन्तरिक विकार समझ लेता है। यदि वह पुरुष और प्रकृति के भेद को साक्षात देख ले, तो दुःखों का मूल, अज्ञान, दूर हो जाता है, और दुःखों की निवृत्ति हो जाती है। योग कहता है कि दृष्टिकोण का यह परिवर्तन लम्बे, कठिन परिश्रम का फल है। योग में बुद्धि के साथ संकल्प भी सम्मिलित हो जाता है। सांख्य विवेचन है; योग अनुशासन है। इसका उद्देश्य जिज्ञासा नहीं, अनुशासन है। सांख्य की अपेक्षा, योग में क्रिया पर अधिक जोर है।

चित्तानुषक्त योगशास्त्र

योगशास्त्र में केवल बौद्धिक विषयों का विचार है। इनमें वस्तुतः विचारार्थ एकमात्र तत्त्व है 'चित्त', अर्थात् बुद्धि। इसी के विविध स्वरूपों का योगशास्त्र में विचार है।

'योग' का अर्थ है—समाधि। इसी को 'चित्तवृत्ति का निरोध' भी कहते हैं। यह 'समाधि' चित्त का ही एक सहज धर्म है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

चित्त की अवस्थाएँ

चित्त की पाँच अवस्थाएँ होती हैं, जिन्हें 'चित्त-भूमियाँ' कहते हैं—(१) क्षिप्त, (२) मूढ़, (३) विक्षिप्त, (४) एकाग्र तथा (५) निरुद्ध।

क्षिप्त :—इसमें रोजगुण का प्राधान्य होता है। राग-द्वेष इसका कारण है। धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य में प्रवृत्ति इसके लक्षण है। यह स्थिति साधारण संसारी मनुष्यों की होती है।

मूढ़ :—काम, क्रोध, लोभ, मोह इसके कारण हैं। निद्रा, तन्द्रा, भय, मोह, आलस्य, दैन्य आदि में प्रवृत्ति इसके लक्षण हैं। इस अवस्था में तमोगुण का प्राबल्य होता है और यह अधम मनुष्यों की स्थिति है।

विक्षिप्त :—सत्त्व की अधिकता रहने पर भी, रजस् के कारण जय और पराजय के बीच में, कभी इधर और कभी दूसरी तरफ, चित्त की वृत्ति भटकती रहती है। कहते हैं कि देवताओं का तथा प्रथम भूमि में स्थित जिज्ञासुओं का चित्त 'विक्षिप्त' होता है। सत्व के आधिक्य के कारण राजसिक वृत्ति के रहने पर भी, इस भूमि में कभी-कभी स्थैर्य आ उभरता है। 'क्षिप्त' अवस्था से यही वैशिष्ट्य इस भूमि की है—'क्षिप्ता द्विशिष्टं, विशेषोऽस्थेमबहुलस्य कादाचित्कः स्थेमा'—तत्ववैशारदी, १-१।

एकाग्र :—विशुद्ध सत्त्व के उद्रेक से एक ही विषय में लगे हुए चित्त को 'एकाग्र' कहते हैं। इस अवस्था में चित्त निर्मल स्फटिक के समान होता है। यह स्थिति योगियों को होती है। इस स्थिति की अन्तिम अवस्था विवेक-ख्याति है।

निरुद्ध :—इस स्थिति में विवेक-ख्याति द्वारा 'चित्त और पुरुष का पूर्ण स्वरूप मालूम होकर 'पर-वैराग्य' होता है।' इससे ऊँची

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

निरोधावस्था में पर-वैराग्य के संस्कार मात्र शेष रह जाते हैं। [चित्त] की आत्म-स्वरूप में स्थिति होती है। अविद्या आदि पांचों [क्लेश] नष्ट हो जाते हैं, कर्माशयरूप जन्मादिकों के बीज नहीं रहते। [इसी] को असंप्रज्ञात एवं निर्बीज समाधि कहते हैं।

तीन और दो के संवर्ग

उपर्युक्त चित्तभूमियों में प्रथम तीन भूमियों में यद्यपि कथ[ञ्चित्] वृत्ति का निरोध है, किंतु ये तीनों भूमियाँ योग साधन के [लिए] यथार्थतः अनुपयुक्त हैं। अतएव योग के साधनों से ये दूर क[र दी] गई हैं। अन्तिम दोनों भूमियाँ योग के लिए सर्वथा उपयोगी [हैं], इसलिए ये ही अन्तिम दोनों भूमियाँ योगशास्त्र के साध्य हैं, [इन्हें] भी प्रधानतः 'निरुद्ध' अवस्था को ही 'योग' कहते हैं—'[योगश्] चित्तवृत्तिनिरोधः'।

त्रिगुणात्मक चित्त

'चित्त' त्रिगुणात्मक है। तीनों गुणों के उद्रेक क्रमशः समय-[समय] पर 'चित्त' में होते रहते हैं। उसके अनुसार 'चित्त' के भी तीन [रूप] होते हैं—प्रख्या, प्रवृत्ति, तथा स्थिति।

प्रख्याशीलता की स्थिति में 'सत्त्व-प्रधान चित्त' रजस् [और] तमस् से संयुक्त रहता है और 'अणिमा' आदि ऐश्वर्य का [प्रेमी] होता है।

तमोगुण से युक्त होने पर यही 'चित्त' अधर्म, अज्ञान, अवै[राग्य] तथा अनैश्वर्य का प्रेमी होता है। मोहावरणों से सर्वथा क्षीण [होकर] रजस् के अंश से युक्त होने पर यही 'चित्त' सर्वत्र प्रकाशमान हो[ता है] और धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य से युक्त होता है।

प्रथम अवस्था में 'चित्त' ऐश्वर्य का प्रेमी मात्र होता है, [और] अन्तिम अवस्था में वही 'चित्त' ऐश्वर्य की प्राप्ति कर लेता है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

चित्त-वैमल्य से प्रकृतिपुरुषान्यताख्याति

जब इस चित्त में रजस् के मलों का लेशमात्र भी नहीं रहता, तब सत्व-प्रधान 'चित्त' अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है और प्रकृति-पुरुष की 'अन्यताख्याति', अर्थात् विवेक-बुद्धि, को प्राप्त करता है। पश्चात् वह 'धर्ममेघसमाधि' में प्रतिष्ठित हो जाता है।

प्रतिबिम्बन ही अभेद का मूल

'चित्त' जड़ है और 'पुरुष' चेतन है। अनादि अविद्या के कारण 'पुरुष' और 'प्रकृति' में परस्पर एक प्रकार का अभेद सम्बन्ध हो जाता है। इससे बुद्धि की वृत्तियों का पुरुष में आरोप होता हैं और 'मैं शान्त हूँ, दुःखी हूँ तथा मूढ़ हूँ', इस प्रकार के ज्ञान पुरुष में उदित होते हैं। बुद्धि की विषयाकार वृत्तियाँ पुरुष में प्रतिबिम्बित होती हैं, वही 'पुरुष की वृत्ति' कही जाती है। पुरुष का प्रतिबिम्ब 'चित्त' पर पड़ता है। उससे 'चित्त' भी अपने को चेतन के समान समझने लगता है और चेतन की तरह क्रियाशील हो उठता है, यही 'चित्त की वृत्ति' है। इस प्रकार इन दोनों में परस्पर आरोप होता है।

ये 'चित्त की वृत्तियाँ' तो अज्ञान के कार्य हैं। इनका दमन अनिवार्य है। ये वृत्तियाँ जब धर्म, अधर्म तथा वासनाओं के उद्भव-कारण होते हैं, तब वे क्लेश देती हैं और 'क्लिष्ट' कही जाती हैं।

ये वृत्तियाँ जब रजस् और तमस् से रहित बुद्धिसत्त्व की प्रशांत-वाहिनी प्रज्ञा— 'ख्याति' देने वाली होती हैं: तब वे 'अक्लिष्ट' कहलाती है।

वृत्ति-संस्कार चक्र की करामात !

इन वृत्तियों से 'संस्कार' होते हैं और 'संस्कार' से 'वृत्तियाँ' होती हैं। इस प्रकार 'वृत्ति-संस्कार-चक्र' सतत गतिशील रहता है। निरोध की अवस्था में यह चक्र केवल संस्कार-रूप में रह जाता है या अभ्यास

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

के द्वारा संस्कारों का भी क्षय हो जाने से आत्यन्तिक लय में होकर 'विदेह कैवल्य' को प्राप्त करता है। निरोध समाधि में जाना ही योगियों की 'मुक्ति' है।

पाँच मुख्य वृत्तियाँ

ये 'वृत्तियाँ' पाँच हैं—'प्रमाण', 'विपर्यय', 'विकल्प', 'निद्रा' 'स्मृति'। इन्हीं में चित्त की अन्य सभी वृत्तियाँ अन्तर्भूत हैं।

प्रत्येक वृत्ति या मानसिक प्रक्रिया में तीन पक्ष स्पष्ट होते ज्ञान, भाव और क्रिया।

त्रिविध प्रमाण

सांख्य की भाँति योग में भी 'प्रत्यक्ष', 'अनुमान' और (वेद शास्त्र), ये तीन प्रमाण हैं—'प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि'

प्रत्यक्ष :—मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के द्वारा 'चित्त' बाहर वस्तुओं के साथ उपराग को प्राप्त कर विषयाकार हो जाता अर्थात् वस्तु के आकार को प्राप्त जो 'चित्तवृत्ति' होती है, 'प्रत्यक्ष' प्रमाण है।

अनुमान :—प्रत्यक्ष पदार्थों के आधार पर तर्क और युक्ति जिनकी सम्भावना मानी जाए, जैसे धुआँ देखकर यह अन्दाज लगाया जाता है कि जहाँ धुआँ उठ रहा है, यहाँ अग्नि अवश्य होगी। नदी में बाढ़ आई देखकर दूर देशों में वर्षा होने का ज्ञान 'अनुमान' है।

आगम :—वेदशास्त्र तथा यथार्थ वक्ता पुरुषों के वचन आगम कहते हैं। जो पदार्थ मनुष्य की चक्षुरादि इन्द्रियों के प्रत्यक्ष नहीं हैं और जहाँ अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता, उसके स्वरूप का ज्ञान वेद, शास्त्र तथा महापुरुषों के वचनों से लगाया जाता यही आगम है। 'आगम' प्रमाण को ही 'आप्तवचन' कहते हैं।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सपर्यंय-विपर्यय-विकल्प

विपर्यय :—किसी वस्तु के मिथ्या ज्ञान को विपर्यय रहते हैं—विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठम् । कुछ विद्वानों ने संशय को भी विपर्यय कहा है । जैसे दूर से चमकती हुई सीप को चाँदी समझ लेना, अंधेरे में पड़ी हुई रस्सी को साँप मान लेना और नित्य चेतन आत्मा को जड़ अनित्य मान लेना, आँख को अँगुली से दबाकर एक चन्द्रमा के दो चन्द्रमा दिखाई पड़ने से दो ही मान लेना विपर्यय ज्ञान है ।

विकल्प :—शब्द-ज्ञान से उत्पन्न होने वाला, किन्तु वस्तु-शून्य, अर्थात् जिस वस्तु का ज्ञान हो उस वस्तु का अत्यन्त अभाव रहे, ऐसे ज्ञान को विकल्प कहते हैं—शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः । जैसे—'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपम्' (चैतन्य पुरुष का स्वरूप है) । यह 'विकल्प' का एक उदाहरण है । यहाँ यह जानना चाहिए कि 'चैतन्य' ही तो पुरुष है, फिर किसका स्वरूप ? 'पुरुष' और 'चैतन्य' में भेद का भान क्यों ? 'चैतन्य' को 'पुरुष' से पृथक् समझना 'विकल्प' है ।

निद्रा—किसी वस्तु के अभाव-ज्ञान का आलम्बन करने वाली वृत्ति 'निद्रा' है । इस अवस्था में 'तमस्' के आधिक्य से 'जाग्रत्' और 'स्वप्न' की 'वृत्तियों' का अभाव रहता है । 'निद्रा' ज्ञान का अभाव नहीं है । यह भी एक 'वृत्ति' है, सोकर उठने वाले पुरुष को 'जाग्रत्' अवस्था में 'मैं खूब सोया', 'मेरा मन शान्त है', 'मैंने कुछ नहीं समझा', इत्यादि बोध होते हैं । इसलिए निद्रा को भी 'वृत्ति' कहते हैं ।

स्मृति—अनुभूत विषयों का ठीक-ठीक उसी रूप में (असंप्रमोष) स्मरण होना 'स्मृति' है ।

ये ही वृत्तियाँ कार्य उत्पन्न कर, सूक्ष्म रूप से 'संस्कार' के रूप में, हमारे अन्तःकरण में रहती हैं । समय पाकर 'सादृश्य' आदि के द्वारा उद्बुद्ध होने से ये संस्कार पुनः 'वृत्ति' का रूप धारण करते हैं । यह चक्र सतत चलता रहता है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

इन्हीं वृत्तियों के निरोध से क्रमशः तत्त्व-ज्ञान होता है और दुःख की आत्यन्तिकी निवृत्ति होती है। इन्हीं वृत्तियों का निरोध का 'योग' है।

यह 'निरोध' अभ्यास और वैराग्य से होता है—'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध :'।

चित्त की जो वृत्तियाँ तमोगुण के संसर्ग से निद्रा, आलस्य, निरुत्साह पैदा करती हैं, वह अभ्यास से निरूद्ध हो जाती हैं।

रजोगुण की बाहुल्यता से चित्त में राग, द्वेष, चंचलता, सांसारिक विषयों में कामना आदि की वृत्तियाँ, वैराग्य से उन विषयों में उत्पन्न होकर वैसे ही अन्तर्मुख होकर लीन हो जाती हैं, जैसे ईंधन के जल जाने पर अग्नि अपने-आप शान्त हो जाती है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य दोनों से ही चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं। चित्तरूपी नदी दोनों तरफ बहती है—एक तो वह विवेक के मार्ग से कैवल्य तक जाती हुई कल्याण देने वाली है और दूसरी आत्मा और अनात्मा के अविवेक के मार्ग से जाती हुई पाप देने वाली है। वैराग्य के द्वारा नदी का पाप-स्रोत रोका जाता है और विवेक-दर्शन के अभ्यास, अर्थात् चित्त की सत्त्व में प्रशांतवाहिता में स्थिर रखने के प्रयत्न से विवेक-स्रोत का उद्घाटन होता है। अतः चित्तवृत्ति का निरोध इन दोनों स्रोतों पर निर्भर है।

स्थिति या ठहराव के लिए जो यत्न किया जाता है, वह अभ्यास है।

आचरण क्रिया है, परन्तु ऐसी क्रिया जिसे निश्चित बनाया गया है। यह निश्चितता अभ्यास से प्राप्त होती है। बच्चा अपने अंगों को हिलाता है, ध्वनि भी करता है, परन्तु चलने और बोलने की योग्यता से संपन्न होने के लिए उसे वर्षों की शिक्षा की आवश्यकता है। जब हमारी क्रिया निश्चित हो जाती है, तो यह सुगम

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

साधक भी हो जाती है। जीवन का हित इसी में है कि जितनी हितकर क्रियाओं को आदत के सुपुर्द कर सकें, कर दें।

योगाभ्यास एक विशेष प्रयोजन से होता है, परन्तु हर प्रकार के अभ्यास की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसे पर्याप्त समय के लिए जारी रखा जाए, इसे निरन्तर किया जाए, और इस विश्वास के साथ कि अभ्यास करने योग्य है। जहाँ श्रद्धा नहीं होती, और कोई काम बाहरी दबाव के कारण किया जाता है, उसका असर दबाव हटते ही हट जाता है।

हमारी ज्ञानेन्द्रियों में जीभ और नाक तो मेदे के चौकीदार हैं; इनका प्रमुख काम यह बताना है कि क्या खाने के योग्य है, और क्या नहीं। स्पर्श वस्तु-ज्ञान की निश्चितता का प्रमुख साधन है। आँख और कान ज्ञान के कारण ही नहीं, ये जो कुछ दिखाते और सुनाते हैं, उसमें अनुराग भी पैदा कर देते हैं। यह अनुराग हमें विषयों का दास बना देता है। हम सिनेमा देखते हैं, मधुर राग सुनते हैं। वह चित्र पीछे भी हमारी आँखों के सामने रहते हैं और राग हमारे कानों में गूँजते हैं। हम इन विषयों की तृष्णा से एक व्यसन में फँस जाते हैं। आँख और कान हमारे सेवक नहीं रहते, स्वामी बन जाते हैं। वैराग्य की वृत्ति जीवन की क्रिया को नहीं रोकती; केवल विषयों की तृष्णा से विमुक्त कर देती है। वीतराग पुरुष की स्थिति कमल के फूल की सी है जो रहता जल में है, परन्तु जल को अपने अन्दर व्याप्त नहीं होने देता। विरक्त पुरुष जीवन के मेले से गुजर जाता है, परन्तु अशान्त नहीं होता। स्वाधीनता का सर्वोत्तम रूप विषयों की तृष्णा से स्वाधीन होना है।

समाधि के भेद

इस 'निरोध' की दो अवस्थाएँ होती हैं—एक संप्रज्ञात और दूसरी असंप्रज्ञात।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

संप्रज्ञात या सबीज समाधि

चित्त में अनेक वृत्तियाँ होती हैं। जब 'चित्त' किसी एक पर एकाग्र होता है, तब उसको वही एकमात्र वृत्ति जाग्रत् रहती अन्य वृत्तियाँ अशक्त होकर उसी एक वृत्ति को बलिष्ठ बनाती उसी एक वृत्ति में ध्यान लगाने से उसमें 'प्रज्ञा' उदित होती है। उससे अन्य वृत्तियाँ विनष्ट होने लगती हैं। इसी को 'संप्रज्ञात समाधि' कहते हैं। इसी को 'सबीज' समाधि भी कहते हैं। समाधि में कोई-न-कोई आलम्बन रहता है और समाधि की अ में उन आलम्बनों का भान भी होता है।

इस अवस्था में 'चित्त' एकाग्र रहता है, सत्-रूप अर्थ को, यथार्थ तत्त्व को, प्रकाशित करता है; 'क्लेशों' का शमन करता कर्मजन्य बंधनों को शिथिल कर देता है, निरोध के निकट जाता है।

संप्रज्ञात समाधि के भेद

इस समाधि के चार रूप हैं—'वितर्कानुगत', 'विचारानु 'आनन्दानुगत' और 'अस्मितानुगत'।

वितर्कानुगत

इस समाधि में कोई स्थूल पदार्थ तर्क-वितर्क या चिन्तन विषय बनता है। हम अपने शरीर पर, शरीर के किसी अं सूर्य आदि किसी बाह्य पदार्थ पर, या समग्र संसार पर ध्यान हैं और ध्यान के समय चित्त को इधर-उधर जाने से रोकते हैं।

स्थूल पदार्थों पर स्थूल इन्द्रियों की सहायता से जो आदि किए जाते हैं, वे इस वितर्क समाधि के अन्तर्गत आते हैं।

विचारानुगत

स्थूल पदार्थों का साक्षात् करने के बाद सूक्ष्म पदार्थों में, तन्मात्राओं अर्थात् रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श के भावना

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

विचार के माध्यम से समाधि होती है। सूर्य आदि स्थूल पदार्थों के बाद उनके तेज आदि का ध्यान करना विचारानुगत है।

आनन्दानुगत

वितर्क और विचार समाधि सफल हो तो साधक गद्गद् हो जाता है। ऐसी अवस्था में बोध तो पीछे हो जाता है, केवल आनन्द ही अनुभूत होता है। ऐसी अवस्था में भी वृत्तियाँ अस्त हो जाती हैं, और एकाग्रता उपलब्ध होती है।

अस्मितानुगत

इन्द्रियाँ 'अस्मिता' से उत्पन्न होती हैं। चित्त-प्रतिबिम्बित बुद्धि 'अस्मिता' है। इस समय चित्त और चित् में 'एकात्मिका संवित्' होती है। इस प्रकार 'अस्मिता' इन्द्रियों से भी सूक्ष्म है। इसको आलम्बन बनाकर जो 'समाधि' हो, वह 'अस्मितानुगत समाधि' कही जाती है।

असम्प्रज्ञात समाधि के इन चारों आकारों की झलक हम विज्ञान, दर्शन, कला और आत्म-चिंतन में देखते हैं। वैज्ञानिक किसी स्थूल पदार्थ की परीक्षा में इतना विलीन होता है कि उसे अन्य वस्तुओं का कोई बोध नहीं होता। दार्शनिक सूक्ष्म विषयों का चिंतन करता है। उसकी एकाग्रता की कथाएं तो प्रचलित ही हैं। कलाकार चित्र बनाने में, दर्शक सुन्दर चित्र को देखने में अपने आपको भूल जाता है; उसकी चेतना मानो आनन्दानुभूति ही बन जाती है। आत्म-चिंतन में हमारा ध्यान बाहर से हटकर अपने स्व पर केन्द्रित हो जाता है।

निर्बीज समाधि

प्रत्येक अनुभव अपने पीछे अपना चिह्न छोड़ जाता है; अनुभव के बाद चित्त की अवस्था वही नहीं रहती, जो उसके पूर्व थी। 'सम्प्रज्ञात' की अवस्था में प्रज्ञा का उदय होता है। इसमें आलम्बन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

रहता है और 'ज्ञान' 'ज्ञाता' तथा 'ज्ञेय', इन तीनों की भावना रहती है। परन्तु जब ये तीनों भावनाएँ अत्यन्त एकीभूत हो हैं, सभी वृत्तियाँ परम वैराग्य से निरूद्ध हो जाती हैं, एक प्रका आलम्बन का अभाव हो जाता है, संस्कारमात्र शेष रह जाता है समाधि को 'असंप्रज्ञात' कहते हैं। इसे 'निर्बीज समाधि' भी हैं, क्योंकि इसमें 'क्लेश' तथा 'कर्माशय' नहीं रहते।

निर्बीज समाधि के भेद

इसके दो भेद हैं—'भवप्रत्यय' तथा 'उपायप्रत्यय'।

भवप्रत्यय

'भव' का अर्थ है, 'अविद्या'। अनात्मा में आत्मा की 'अविद्या' है। इस 'अविद्या' के कारण जो निरोध समाधि हो, 'भवप्रत्यय असंप्रज्ञात' समाधि है।

भवप्रत्यय समाधि के अन्तर्गत विदेह और प्रकृति-लय आती है। जब चित्त की सभी वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं, उस चित्त कोई आकार नहीं धारण करता, वह स्थिर होकर रहता अर्थात् 'भूतों' को या 'इन्द्रियों' को ही, किसी एक को, आत्मा कर उसकी उपासना से उत्पन्न वासनाओं से वासित अन्तःकरण रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र, इन छः वस्तुओं से 'षाट्कौशिक' शरीर का पतन होने पर, इन्द्रियों या भूतों होकर, संस्कारमात्र से युक्त मन को रखनेवाले जीव 'विदेह' कहे हैं। अर्थात् इनमें इनकी वासनाओं का संस्कारमात्र ही रह जाता इस संस्कारमात्र से युक्त चित्त के द्वारा 'हमें कैवल्य पद प्रा गया है', ऐसा ध्यान करनेवाले जीव 'विदेह' कहे जाते हैं अवस्था में वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती है, फिर भी केवल संस् लेकर ही ये भोग करती हैं। इसीलिए 'कैवल्य अवस्था' के समान यह 'विदेहावस्था' है, परन्तु विवेक-ख्याति न प्राप्तकर

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

संस्कार से युक्त रहने के कारण यह अवस्था 'विदेहावस्था' से भिन्न ही है। अवधि की पूर्ति होने के अनन्तर ये पुनः संसार में आ जाते हैं। इसलिए अविद्या से युक्त यह समाधि है। इस प्रकार अव्यक्त, महत्, अहंकार, पञ्चतन्मात्राओं में से किसी एक को आत्मा मानकर उसकी उपासना से वासित अन्तःकरण वाला जीव, शरीर का पतन होने पर, उपर्युक्त अव्यक्त आदि किसी में लय को प्राप्त, विवेक-ख्याति को न पाकर भी कैवल्यपद को प्राप्त किए हुए के समान अपने को समझता हुआ, 'प्रकृतिलय' कहलाता है। अवधि की पूर्ति के पश्चात् पुनः यह संसार में आ जाता है, जिस प्रकार वर्षा के समाप्त होने पर मिट्टी में मिल गया हुआ मेंढ़क का शरीरपुनः वर्षा के जल को पाकर अपना शरीर धारण कर लेता है।

इस समाधि में विवेक-ख्याति नहीं होती तथा इसके अनन्तर ये योगी पुनः संसार में आ जाते हैं। अतएव यह अवस्था उपादेय नहीं है। यह एक प्रकार से मोहावस्था ही है।

'उपायप्रत्यय' योगियों को ही होता है। यह 'श्रद्धा' (चित्त की प्रसन्नता), 'वीर्य' (धारणा), 'स्मृति' (ध्यान), 'समाधि' (संप्रज्ञात) तथा 'प्रज्ञा' (ज्ञानप्रसाद मात्र) से उत्पन्न होता है। श्रद्धा योगियों की माता के समान रक्षा करती है, अर्थात् कुमार्ग में नहीं जाने देती है। विवेक-बुद्धि की इच्छा करनेवालों को 'श्रद्धा' से 'वीर्य', उससे 'स्मृति' उत्पन्न होती है, जिससे चित्त शान्त और अविक्षिप्त होकर समाधि में स्थित हो जाता है, अर्थात् संप्रज्ञात समाधि को प्राप्त करता है। पश्चात् उस असंप्रज्ञात समाहित चित्त में प्रज्ञ-विवेक उत्पन्न होता है और वह यथावत् वस्तु को जानने में लगता है। इसके अभ्यास से उसे विषयों से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। उसके पश्चात् वह 'असंप्रज्ञात समाधि' में स्थिर हो जाता है।

भवप्रत्यय में ज्ञानोदय नहीं होता और अविद्या रहती है। अतएव उसमें संसार की तरफ झुक जाने की आशंका रहती है, किंतु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

दूसरे, अर्थात् उपाय-प्रत्यय में प्रज्ञा का उदय होने के कारण अ... का नाश हो जाता है और पश्चात् क्लेशों का भी नाश होता है ... ज्ञान में चित्त प्रतिष्ठित हो जाता है। प्रज्ञा या अन्तर्ज्योति ... दर्शन की क्षमता देती है।

विघ्न

'चित्त' को विक्षेप में ले जाने वाले निम्नलिखित 'विघ्न' हैं— ... अकर्मण्यता, संशय, समाधि के साधनों की चिंता न करना (प्रमा...) आलस्य (भारी होने के कारण शरीर तथा चित्त की कार्य करने के प्रति अप्रवृत्ति) विषयों में आसक्ति, भ्रांतिदर्शन (विपर्यय ...) समाधि की भूमिका को न पाना, भूमि को पाकर भी उसमें चित्त ... स्थिरता का न होना।

विक्षेपचित्त वाले को दुःख, दौर्मनस्य, शरीर में कंपन, ... तथा प्रश्वास होते हैं।

इन सबको रोकने के लिए एक तत्त्व में चित्त को अवल... करने का अभ्यास करना चाहिए। साथ ही साथ सब प्राणि... मैत्री की भावना, दुःखियों के प्रति करुणा की भावना, पुण्यात्... के प्रति प्रसन्नता, पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना से चि... शांत करना चाहिए।

जो लोग समाहितचित्त नहीं हैं; वे वे भी तपस्या, स्वा... किए हुए सभी कार्यों के फल को ईश्वर में समर्पण के द्वारा ... प्रवृत्त हो सकते हैं। इन क्रियाओं से समाधि की भावना और ... का क्षय होता है। पश्चात् प्रज्ञा का उदय और 'सत्त्व' और ... में भेद का ज्ञान होता है।

'चित्त' अविद्या से आच्छादित रहता है। इसमें मिथ्या... होता है और भ्रांति होती है। हम भूल जाते हैं कि हम वा... रूप में आत्मा हैं; हम अपने आपको शरीर से और शरीर के ...

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

इतना बांध देते हैं कि हमें आत्मा और अनात्मा में भेद नहीं दीखता। धर्म के क्षेत्र में, अनात्मा को आत्मा समझना अविद्या है। इस तरह, अविद्या के प्रभाव में, हम पाशव स्तर पर अनित्य में नित्य देखते हैं और धार्मिक स्तर पर अनात्मा में आत्मा को देखते हैं।

अतएव चित्त को विशुद्ध करने के लिए मिथ्या ज्ञान का नाश करना आवश्यक है। मिथ्याज्ञान से ही 'क्लेश', अर्थात् विपर्यय की उत्पत्ति होती है। ये 'क्लेश' वृत्ति के द्वारा प्रसरित होकर चित्त पर गुणों के अधिकार को दृढ़ कर देते हैं, परिणाम को स्थापित करते हैं, अव्यक्त से महत्, महत् से अहंकार, इत्यादि कार्य-कारण की परंपरा को अभिव्यक्त करते हैं तथा आपस में अनुग्राहक बनकर कर्मों के (जाति, आयु तथा भोग-रूप) फलों को सम्पन्न करते हैं, अर्थात् कर्मों से क्लेश और क्लेशों से कर्म, इस परम्परा को उज्जीवित रखते हैं।

पंच क्लेश

'क्लेश' पाँच प्रकार का होता है—'अविद्या', 'अस्मिता', 'राग', 'द्वेष' तथा 'अभिनिवेश'।

अविद्या

योग में अविद्या को अयथार्थ या मिथ्या-ज्ञान के अर्थ में लिया जाता है।

अविद्या को शेष क्लेशों की भूमि कहा गया है; इसी में ये प्रफुल्ल होते हैं। यह क्लेश चार अवस्थाओं में प्रकट होते हैं—प्रसुप्ता, तनुता, विच्छिन्नता और उदारता। इन अवस्थाओं को समझने के लिए हम वृक्ष का उदाहरण ले सकते हैं। बीज की स्थिति में वृक्ष प्रसुप्त अवस्था में होता है। वृक्ष बीज में दिखाई नहीं देता, परन्तु उसमें विद्यमान तो है; इसीलिए एक बीज पीपल का वृक्ष बनता है, दूसरा आम का। बीज नन्हीं कोंपल के रूप में व्यक्त होता है; यह वृक्ष की तनुता (अल्प) अवस्था है। इसके बाद एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

कई भागों में बँटती है और उनमें से हर एक भाग बढ़ने लगता है। यह विच्छिन्नता की अवस्था है। अन्तिम अवस्था (उदारता) में वृक्ष अपनी जवानी पर होता है।

इसी प्रकार का विकास क्लेशों की हालत में भी होता है। राग को लें। राग प्रेम है। जैसा एक मनोवैज्ञानिक ने कहा है, 'सम्पर्क प्रेम का आरंभ और अंत है।' जब हम एक वस्तु के निकट आते हैं, तो कुछ अन्य वस्तुओं से दूर हो जाते हैं। पक्षपात राग के साथ आता है। बच्चे के चित्त में प्रेम का अंकुर आरम्भ से मौजूद रहता है, परन्तु 'प्रसुप्त' रूप में। बाह्य पदार्थ उसे व्यक्त करते हैं और वह 'तनुता' रूप में प्रकट होता है; कुछ वस्तुओं में उसका अनुराग अन्य वस्तुओं की अपेक्षा अधिक होता है। अब 'विच्छिन्नता' का समय आता है। ५-६ वर्ष की आयु तक माता उसे आकर्षित करती है। इसका एक कारण यह है कि माँ भी उसे अपूर्व प्रेम करती है। इसके बाद बच्चा अपने आपको अपने प्रेम का केन्द्र बनाता है। १०-११ वर्ष की आयु में उसका प्रेम इस केन्द्र से बाहर आता है और वह मित्रों को खोजने लगता है। १५-१६ वर्ष के बाद लिंग का शासन आरम्भ होता है। नवयौवन और यौवन काल में दूसरे लिंग (वर्ग) का प्रेम प्रबल उत्तेजन बन जाता है। कुदरत की दृष्टि में व्यक्ति की अपेक्षा जाति का महत्त्व अधिक है, नसल को कायम रखने के लिए एक दार्शनिक के शब्दों में, 'कुदरत स्त्री को आकर्षक और पुरुष को मूढ़ बनाती है।' यह प्रेम की 'उदारता' अवस्था है।

अस्मिता

द्रष्टा और दर्शन कराने वाली शक्ति को एक समझना अस्मिता है।

दृक्-शक्ति 'पुरुष' है तथा दर्शन-शक्ति 'बुद्धि' है। ये दोनों पृथक् रूप हैं। इन दोनों को एक मानना 'अस्मिता' है।

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

द्रष्टा का तत्त्व दर्शन करना, जानना है। इस क्रिया में करणों का प्रयोग होता है। ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि करण हैं। इनकी क्रियाएं क्षणजीवी होती हैं। द्रष्टा, पुरुष, इनसे अलग हैं; वह अविद्या से, अपने आपको दर्शन कराने वाली शक्ति या करण से भिन्न नहीं समझता। यह अस्मिता है। अस्मिता का तत्त्व यह है कि भाग समग्र का महत्त्व प्राप्त कर लेता है। वर्तमान की चेतनावस्था अपना महत्त्व इतना उन्नत कर लेती है कि जीवन का सामग्रिक संवर्द्धन किनारे पड़ जाता है। इसी तरह व्यक्ति अस्मिता से प्रभावित होकर अपने को जगत् में सर्वश्रेष्ठ स्वीकार लेता है। निजी और सामाजिक जीवन की तुल्यता विध्वस्त करने में अस्मिता गंभीर भूमिका का निर्वाह करती है।

राग-द्वेष

मनुष्य स्वयं को 'बुद्धिवंत प्राणी' स्वीकार करता है। परन्तु यथार्थतः बुद्धि उसके जीवन की रहनुमाई नहीं करती; उद्वेग उसपर अनेक बार सवार हो जाता है। बुद्धि का तत्त्व घटनाओं तथा पदार्थों का निष्पक्ष पर्यवेक्षण एवं परीक्षण है; उद्वेग के वशीभूत होकर व्यक्ति ऐसी निष्पक्ष जांच में अक्षम हो जाता है; राग और द्वेष उसे किसी वस्तु को उसके वास्तविक रूप-स्वरूप से परिचित होने से रोकते हैं। हम स्वयं से सर्वाधिक अनुराग रखते हैं; यह अस्मिता का भाव-पक्ष है। फिर हम अपने चतुर्दिक सीमा-रेखाएं खींच लेते हैं; जो कुछ इन रेखाओं के भीतर होता है, वह हमें स्वांश प्रतीत होता है; जो कुछ उनके परे है, उन्हें हम आत्मीय नहीं मानते। जिन मनुष्यों, वस्तुओं, विचारों, उद्देश्यों को हम अपना समझते हैं, उनमें हमें कोई दोष नहीं दिखाई देता; जो मनुष्य, पदार्थ, विचार, उद्देश्य, सम्मोहन सीमाओं से परे हैं, वे निर्दोष नहीं दीखते। राग-द्वेष के कारण जीवन कठिन और कड़ुआ हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-G

गुरु नानक साहब कहते हैं—

राग-द्वेष दोनों खोइये, खोजिये पद निरबान।
नानक कहे पथ कठिन है, कोइ-कोइ गुरुमुख जान॥

अभिनिवेश

अभिनिवेश मृत्यु का भय है। यह जीवमात्र के लिए स्वाभाविक है। योगसूत्र में कहा है कि मृत्यु-भय जैसा मूर्ख को होता है, वैसा ही पंडित को होता है। जीवन के साथ ही जीवन का प्रेम व्यक्त हो जाता है, और यह प्रेम व्यापक है। जो भाव एक ओर जीवन का प्रेम दीखता है, वही दूसरी ओर मृत्यु का भय दीखता है। 'भय वह दुःख है, जो भावी दुःख का ख्याल करके अनुभूत होता है'। बहुतों की समझ में नहीं आता कि वे मृत्यु से क्यों भयाक्रांत हैं; जब तक जीते हैं, तब तक तो मृत्यु की पकड़ से परे हैं; जब मृत्यु होगी, तब दुःखानुभूति से परे हो जाएंगे। इस सूत्र पर लिखते हुए कुछ भाष्यकारों ने कहा है कि मृत्यु का भय पूर्वजन्मों के अनुभव का परिणाम है—हम इस जन्म में नहीं मरे, परन्तु पहले तो कई बार मर ही चुके हैं।

योग के अंग (अष्टांग योग)

सूत्र २९ में कहा है—'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये योग के आठ अंग हैं।

यम और नियम—ये दोनों अंग कर्म-योग हैं और इनका सम्बन्ध व्यक्ति के सामान्य जीवन से है; इनका अनुष्ठान उसके जीवन में एक क्रांति ला देता है।

यम-नियम-योग साधनमात्र की प्रथम भूमिका हैं। साधन-पथ पर चलने के लिए ये अत्यंत आवश्यक एवं अनिवार्य पाथेय हैं। मार्ग की बाधाओं एवं सीमाओं से रक्षा करते हैं। किसी को क्षति-ग्रस्त किए बिना एवं स्वयं क्षतिग्रस्त हुए बिना साधन-पथ पर अग्र

Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

होने के लिए ये ही अन्तरंग बल-सम्बल हैं। शेष अंग ध्यान-योग के अंश हैं।

यम

कायिक, वाचिक तथा मानसिक संयम को 'यम' कहते हैं।

सूत्र ३० में कहा है—'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यम हैं।'

बाधाएँ चार हैं और निवर्तक पाँच हैं। काम का निवर्तक ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य अप्रतिहत वीर्य तथा ब्रह्मलोक-ब्रह्मविद्या-प्रापक है। योगशास्त्र में इसको विराट् महिमा है; यथा 'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।' तात्पर्य यह कि सुदुर्लभ ब्रह्मविद्या भी ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त हो सकती है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में ब्रह्मचर्य को शारीरिक तपस्या कहा है (अ० १७।१४)। महर्षि सनत्सुजात ने महाराज धृतराष्ट्र के निकट ब्रह्मचर्य के महात्म्य का विस्तृत वर्णन किया है। यहाँ उसका मात्र एक श्लोक दिया जा रहा है—

नैतद् ब्रह्म त्वरमाणेन लभ्यं
यन्मां पृच्छन्नतिहृष्यतीव।
बुद्धौ विलीने मनसि प्रचिन्त्या
विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या॥
(महा० उद्योग० सनत्सुजात० ४४।२)

'राजन्! आपने मुझसे जो ब्रह्मविद्या का विषय पूछा, वह त्वरायुक्त मानव को लभ्य नहीं है। मन प्रलीन होने पर बुद्धि में वह विद्या अवभासित होती है। ब्रह्मचर्य से ही उसका लाभ करना सम्भव है।'

ब्रह्मचर्य की गणना अष्टांग-योग में सबके अन्त में इसलिए है कि पराधीन करने वाली वृत्तियों में काम सर्वाधिक सशक्त है और पहले के चार गुणों के सहारे ही इसको विजित किया जा सकता है। काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। वह बार-बार जीनें-मरनें का स्वांग करता रहता है। आत्मा के अतिरिक्त देशान्तर, कालान्तर या वस्त्वन्तर-रूप में विद्यमान या वर्त्तमान किसी वस्तु की कामना काम है। न चाहने के रूप में भी यह काम ही रहता है। इसी से कामरूप को 'दुरासद' कहते हैं। उसको पकड़ पाना कठिन है। नित्य-प्राप्त सत्ता के खो जाने की भ्रांति और अन्य की प्राप्ति की इच्छा काम का मूल है। इसकी निवृत्ति के लिए अद्वय-तत्त्व का, ब्रह्म का, आत्मरूप का ज्ञान अपेक्षित है। ब्रह्म के लिए चर्या ही इस इच्छा को मिटा सकता है।

यमों द्वारा व्यावृत्य

स्तेय, लोभ एक दुर्गुण है। इसके प्रधानतः दो रूप होते हैं। जिस वस्तु पर अपना स्वत्व नहीं है, उसको येन-केन-प्रकारेण प्राप्त करना, इसका नाम स्तेय है। दूसरा रूप है—जो वस्तुएँ अपने पास हैं, जिनपर अपना स्वत्व है, उन्हें अधिकाधिक संग्रह करके अपने पास रखे, परिग्रह करे, इसका नाम 'परिग्रह' है। लोभ के इन दोनों तरूण—तनयों को नियंत्रित करने के लिए अस्तेय और अपरिग्रह नाम की दो वृत्तियाँ आवश्यक होती हैं, पहले अवीतिपूर्ण उपार्जन का उपेक्षण, फिर आवश्यकता से अधिक संग्रह का परित्याग।

काम और लोभ की पूर्ति के अभाव में मनुष्य के मन में क्रोध का उदय होता है। इच्छापूर्ति में बाधक तत्त्वों के प्रति द्वेष भी होता है। द्वेष और क्रोध ज्वलनात्मक—वृत्ति के रूप में उग्र हो उठते हैं और हिंसा तथा विद्रोह का तांडव मच उठता है। हिंसा के निरोध में अहिंसा अनिवार्य है। अहिंसा आत्मस्वरूप के अनुरूप अन्तःकरण का एक गुण है। यह स्वरूप-स्थिति के अधिक अनुकूल पड़ता है। दया, करूणा तथा क्षमा से भी अंतरंग है; क्योंकि वे दोनों व्यवहार-दशा में ही रहते हैं। अहिंसा शान्ति के रूप में व्यवहारशून्य दशा में भी विद्यमान रहती है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding:IKS-MoE-Grant

यमों का प्रयोजन

हमारी वाणी कर्म-कलाप, काम-संकल्प, विचार-विवेक, असत्य से अनुविद्ध हो गयी है। हमारी बुद्धि अधिकांशतः असत्य को ही सत्य के रूप में ग्रहण करती है और व्यवहार करती है। व्यवहार में माता के लिए सत्य अलग होता है, पत्नी के लिए अलग। सत्य की यह विभाजक रेखा बिना समाधि के विध्वस्त नहीं हो सकती और स्वरूप-सत्य का साक्षात्कार होने के लिए ऐसा आवश्यक है। ऐसी अवस्था में यदि केवल वाणी से ही सत्य-भाषण प्रारम्भ कर दिया जाए तो सत्य क्या है, यह जिज्ञासा जाग जाएगी। हम सत्य को जानेंगे तब सत्य को बोलेंगे। क्या बौद्धिक मानस या ऐन्द्रियक सत्य ही सत्य है? आत्मसत्य क्या सर्वथा गुप्त-लुप्त-सुप्त हो गया है? आत्मसत्य क्या है? इस जिज्ञासा का बीज सत्य-भाषण में निहित है। आपकी दृष्टि से जो असत्य है, वह न बोलें, न करें, न विचारें। आपके जीवन में एक ऐसा दिन आएगा, जब आप वास्तविक मौन का महत्त्व मान जाएँगे। सत्य के साक्षात्कार के बिना बोलने का मन ही नहीं करेगा। सत्य की अभिव्यक्ति निःशब्द जो होती है।

कहना न होगा कि अष्टांगयोग का यह प्रथमांग न केवल अपने लिए हितावह है, प्रत्युत लोक-व्यवहार में समाज-सेवा के लिए भी बहुत उपयोगी है। मनुष्यों का सामाजिक जीवन परिवारों में ही व्यतीत होता है। परिवार समाज की नींव है। परिवार में एक पुरुष और एक स्त्री संयुक्त जीवन व्यतीत करने का निश्चय करते हैं। समाज का कल्याण इसी में है कि इस साझे जीवन पर कोई बाह्य आक्रमण न हो। यह आक्रमण अपने निकृष्टतम रूप में लैंगिक आक्रमण है। ऐसे आक्रमण से परिवार का सुख ही नहीं, उसका आत्म-सम्मान भी धूल में मिल जाता है। परिवार का और व्यक्ति का भी अधिकार है कि वह ऐसे आक्रमण से सुरक्षित रहे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation; Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सम्पत्ति में संबंध में यह तो आवश्यक ही है कि कोई मनुष्य दूसरों की कमाई न छीने, न चुराए; इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि हर एक को काम करने का पर्याप्त अवसर मिले। आधुनिक जीवन में एक कठिनाई यह है कि जिन लोगों में ऐसा करने की योग्यता है, वह हर ओर से भोग के सामान एकत्र करने में लगे रहते हैं बहुतेरे लोगों को ऐसी रुकावटों में काम करना पड़ता है कि वह जीवन के अधम स्तर से ऊपर उठ नहीं सकते। सभ्य समाज में प्रत्येक को अधिकार है कि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करके सामाजिक सम्पत्ति से उचित भाग ले सके। यह व्यापक अधिकार व्यक्ति के कर्त्तव्यों को निश्चित करते हैं।

जीवन के अधिकार के साथ 'अहिंसा' का कर्त्तव्य संयुक्त है; 'इकरार' के साथ 'सत्य' संयुक्त है; सम्पत्ति के साथ 'अस्तेय' (चोरी न करना) संयुक्त है; आत्मसम्मान के साथ 'ब्रह्मचर्य' (शुद्धाचरण) संयुक्त है; और काम कर सकने के अधिकार के साथ 'अपरिग्रह' (अधिकाधिक एकत्र करने की रुचि का अभाव) संयुक्त है।

यमों में व्यक्ति के कर्त्तव्यों की जो सूची है, वह मौलिक अधिकारों का सम्मान ही है। यही अधिकार भारत के विधान में मौलिक अधिकार हैं; और यही अन्य देशों में भी मान्य हैं।

जो मनुष्य यमों को सिद्ध कर लेता है, वह अपने आपको तो उन्नत करता ही है, इसके साथ ही अपने वातावरण को भी उन्नत कर देता है। अपनी प्रकृति से विवश, दूसरे उसके आचरण का अनुसरण करते हैं।

धर्म-कक्षा में साधारण धर्म का सार यही है। वेदान्त के साधन-चतुष्टय में शम-दम आदि रूप षट्सम्पत्ति भी इसी का परिपाक है। यह यम ही आदि में धर्म है और अंत में अधिकार-सम्पत्ति। यह जिज्ञासु के जीवन में इतना घुल-मिल जाता है कि तत्त्वज्ञान होने पर भी इसमें शैथिल्य नहीं आता। जीवन्मुक्ति के विलक्षण सुख का

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

आधार बनकर जीवन्मुक्त पुरुष के जीवन में उल्लसित होता रहता है। अन्तर्मुखता के साधनों में यही प्रथम हैं, इसके बिना किसी साधना का साफल्य कल्पनातीत है।

नियम

योग का दूसरा अंग है—नियम। सूत्र ३२ में कहा है—'शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान नियम हैं।

नियम व्यक्तिगत जीवन के निर्माण का आवश्यक साधन है। यदि कोई व्यक्ति यमों की सीमाएँ तोड़ता है, हिंसा या चोरी करता है, तो समाज इसे अपने ऊपर आक्रमण समझता है और उसे दण्डित करता है। नियमों की हालत में व्यक्ति को अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है।

नियमों का निश्चय करने के लिए हमें मनुष्य की स्थिति देखनी होती है। मनुष्य बुद्धिवंत प्राणी है; उसका शरीर दृष्ट भाग है, मन अदृष्ट भाग है। शरीर मन का अधिष्ठान है; 'स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में ही निवास करता है।' हमारी उन्नति में प्रथमअंश स्वास्थ्य है। हमारा शरीर, जिसमें आत्मा और परमात्मा का अधिवास है; एक महामंदिर है। इसे स्वच्छ रखना चाहिए। यही शौच है, जिसे नियमों में प्रथमत्व दिया गया है। शरीर आप ही अपने को स्वच्छ करता रहता है; प्राण शुद्ध वायु को अंदर ले जाता है, अपान अंदर से मलिनता को बाहर ले आता है; हम जल पीते हैं, वह अन्दर के मैल को साथ लाकर पसीने और मूत्र के रूप में बाहर निकल जाता है; हम जो कुछ खाते हैं, उसका व्यर्थांश बाहर फेंक दिया जाता है। शौच में हमें इतना ही करना होता है कि शरीर के परिशोधक प्रयत्न को बाधित न होने दें।

मन की तीन प्रसिद्ध प्रक्रियाएँ हैं—भाव, कर्म और ज्ञान। भाव हमें कभी एक ओर धकेलता है, कभी दूसरी ओर। संसार लुभावने

Sri Sri RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पदार्थों का एक विराट पिटारा है; मन किस-किस को चाहे ? भोगों को भोगने से तुष्टि पूर्ण नहीं होती। हमें अपनी आवश्यकताओं की सूची संक्षिप्त करनी चाहिए; और ऐसा करने के बाद जो कुछ कर सकते हैं, करना चाहिए, यत्न का जो फल हो, उसे सहर्ष स्वीकार करना संतोष है। हममें से हर एक विश्व से कुछ माँगें करता है; इनमें कुछ पूरी होती हैं; कुछ पूरी नहीं होतीं। प्राप्ति हमारी तृप्ति का प्रमाण है; तृप्ति को बढ़ाने के दो ही उपाय हैं; एक प्राप्ति के परिमाण को बढ़ाए जाना; दूसरा माँगों की मात्राएँ घटाना। आधुनिक सभ्यता पहले उपाय पर बल देती है; हमारी परम्परा दूसरे उपाय को महत्त्व देती है।

क्रिया के सम्बन्ध में हमारा लक्ष्य शक्ति का वर्धन है। इसका प्रमुख साधन तप है। तपस्या की कीमत कठिनाइयों में विदित होती है; भोगों का भक्त कठिनाइयों में ऐसे बह जाता है, जैसे नदी की बाढ़ में रेत का ढेर। तपस्वी मनुष्य हर स्थिति में चट्टानवत् अकम्प रहता है।

ज्ञान का उत्तमांश तो वह है, जो हमें अनुभव से उपलब्ध होता है, परन्तु इसकी सीमाएँ बहुत सँकरी हैं। हमारे ज्ञान का बड़ा भाग दूसरों की देन है। इन दूसरों में अधिक संख्या उन लोगों की है जो अपने अनुभव और विचारों को लिपिबद्ध कर गए हैं। उनके सम्पर्क में आने का साधन स्वाध्याय है। आजकल तो ज्ञान साझे की पूँजी है; प्रत्येक इसमें से लेते है ओर कुछ इसमें डालते भी हैं।

भाव, कर्म और ज्ञान हमारे मानसिक जीवन के तीन पक्ष हैं। एक वस्तु जब दूसरी वस्तु के साथ मिश्रित हो जाती है, तब दोनों के ही शुद्ध-स्वरूप नष्ट हो जाते हैं। मिट्टी और पानी मिलकर कीच बन जाते हैं। शक्कर और जल का मिश्रण शर्बत हो जाता है। न शुद्ध जल रहा; न शुद्ध शक्कर। इसी प्रकार मनुष्य का चरित्र भी भिन्न-भिन्न वस्तुओं और व्यक्तियों के समागम से अपनी मौलिकता गवाँ

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

बैठता है। आत्मा-अनात्मा का मिश्रण भी अशुद्धि ही है। मनुष्य के चरित्र में जब पावनता की लहर उठती है तब वह बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही प्रकार से पवित्र रहने का प्रयत्न करता है। शरीर पर मैल चढ़ने से धोनें की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार मन में शत्रु-मित्र के प्रवेश से क्रोध-काम-रूप मालिन्य आ उभरता है और उसके निवारणार्थ द्वेषाग्नि का शमन करना पड़ता है और राग का रंग छुड़ाना पड़ता है। ऐसा कोई भी रंग नहीं है जो शरीर के बहिर्देश या अन्तर्देश में प्रवेश कर जाए और उसको निकालना न पड़े; इसी को 'शौच' कहते हैं। यह अन्तरंग और बहिरंग के मल को प्रक्षालित करने की प्रक्रिया है। स्नान संध्या—वन्दनगत अघमर्षण से यह सम्पन्न होता है। शरीर में जो भोग का अभ्यास हो गया है, वह गहराई में उतर गया है। भोग का अभ्यास एक रोग है, वह जितना-जितना बढ़ता है, उतना-ही-उतना राग-संस्कार घनीभूत होता है, साथ ही भोग के कौशल बढ़ते हैं। भोगी पुरुष किसी-न-किसी को दुःख देकर ही भोग करता है। अतएव भोगवृत्ति के संकोच की राह जान लेनी चाहिए। अपनी रुचि के अनुसार कुछ न हो, कुछ न मिले, कोई न बोले तो थोड़ा कष्ट उठाकर भी अपने को संयत रखना चाहिए। संयमहीन मनुष्य पशु हो जाता है। स्वधर्म के पालनार्थ जो कष्ट नहीं सहता; वह धर्मात्मा नहीं, ढोंगी है। योग-सम्बन्धी नियमों में जो तप है, वही वेदान्तियों की षट्-सम्पत्ति में तितिक्षा बनकर अवतरित होता है। तप की जननी है धृति, आत्मजा है तितिक्षा। जिसके जीवन में तप नहीं है, वह किसी मन्त्र की रक्षा या ज्ञान के धारण की पात्रता नहीं ही प्राप्त कर सकता है।

शौच है—तन-मन में बाहर से व्याप गए मल को विनष्ट करना। तप है भीतर-ही-भीतर तन-मन को तपाकर कुन्दनत्व प्रदान करना। इसके उपरान्त अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए तत्सम्बन्धी ज्ञान तथा तन्मयता प्राप्त करने के लिए 'स्वाध्याय' की आवश्यकता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पड़ती है। धर्म में स्वाध्याय का अर्थ होता है सांगवेदों का अध्ययन। कम-से-कम अपनी शाखा के वेदों का अध्ययन। उपासना में स्वाध्याय का अर्थ होता है इष्ट देवता के दर्शनार्थ जप। जप से प्रपंच की विस्मृति और बारंबार लक्ष्य का स्फुरण होता है, स्वाध्याय बार-बार प्रपंच का विस्मरण कराता है और लक्ष्य का स्फुरण। इससे अभ्यास एवं वैराग्य की परिपुष्टि होती है। जप में स्वरूप-अभ्यास है, दुहराना है और लक्ष्य से अतिरिक्त वृत्ति का उच्छेदन है। स्वाध्याय से लक्ष्य की ओर अभिरुचि उन्नीत होती है।

साधक के लिए यह आवश्यक है कि अपने साधन-शरीर की संपुष्टि के लिए किसी बाह्य वस्तु की कामना न करे। निर्वाह-मात्र के लिए ही खान-पान, परिधान, शयन-स्थान अपेक्षित है, सुख लेने के लिए या ममता करने के लिए कतई नहीं। यदि बाह्य वस्तुओं से ही अपने को गौरवशाली महामहिम माना जाए तो अन्तर में जो गरिमा सुषुप्त है, वह जाग्रत् नहीं होती। संतोष के बिना साधना राख हो जाती है। हाँ, वह संतोष लक्ष्य-प्राप्ति की साधना से नहीं, बाह्य-वस्तुओं की लिप्सा से विरति के रूप में होना चाहिए।

यह जीव तबतक परम परमार्थ की सिद्धि नहीं कर पाता, जबतक पूर्णता एवं अपूर्णता प्रतीति दृष्टि, उल्लास या कल्पनामात्र नहीं हो जाती, तबतक अपनी अल्पज्ञता और अल्पशक्तिता के महाजाल से मुक्ति नहीं मिल पाती। जीव, जीव ही है। साधन की सभी कक्षाओं में जीवत्व अनुगत रहता है। जीवत्व के साथ निर्बलता जुड़ी हुई है। वह कभी उदास होता है, कभी निराश होता है, कभी क्षण-भर के लिए उल्लसित भी होता है, जैसे शरीर स्वस्थ-अस्वस्थ होता रहता है, वैसे मन भी मुर्झाता-मुस्कराता रहता है। जैसे शरीर के लिए चिकित्सक और चिकित्सा की आवश्यकता होती है, वैसे ही मन के रोगों की चिकित्सा है—'ईश्वरप्रणिधान'। ईश्वर शाश्वत है, सर्वज्ञ है, सर्वभूतसुहृद है। जैसे साँस के साथ हवा रहती है

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

आंख के साथ प्रकाश-ज्योति रहती है, वैसे ही प्रत्येक मन में जो सत्वांश है, वह महासत्त्व शरीर परमेश्वर का ही रूप है, मन कण है तो ईश्वर मृत्तिका, मन बिन्दु है तो ईश्वर महासिंधु, मन घट है तो ईश्वर घटाकाश। अतएव ईश्वर में स्वतः समर्पण की विद्या से मन को देखना प्रणिधान है। ईश्वरप्रणिधान का अर्थ यह है कि मनुष्य पूरे यत्न से काम करे, परन्तु यह याद रखे कि उसका यत्न संसार में एक अल्पअंश है; और संसार की व्यवस्था उसके हाथ में नहीं, एक और शक्ति के हाथ में है। ईश्वर में विश्वास बाँधना, अपने आप को उसके अर्पण कर देना आत्मोन्नति में अन्तिम मंजिल है। शरणागति में क्या हो रहा है, क्या मिल रहा है, क्या किया जा रहा है, क्या बोला जा रहा है, इसकी ओर न देखकर सर्वत्र भगवान् को ही देखना चाहिए। उसकी उपस्थिति में, उसके निदेशानुसार जो कुछ हो रहा है, उसमें अनिष्ट की सम्भावना ही क्या है ? इस सम्पूर्ण समर्पण से साधक लौकिक चिंताओं से मुक्त होकर तथा परमार्थ की प्राप्ति में आशावान् होकर विश्वासपूर्वक दृढ़ता से अपने साधन में संलग्न हो जाता है।

ऐसे भक्तों के पीछे परमानन्दरससार—सिन्धु-सर्वस्व, करुणामय, सर्व-समर्थ, सर्वप्रद प्रभु बछड़े के पीछे स्नेहवश दौड़नेवाली गौ की भांति दौड़ते हैं। भक्त जो इच्छा करता है, उसकी पूर्ति करते हैं। श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक भक्त लोग जिस तरह चाहते हैं, भगवान् को नचाते हैं। हठीले, रसोले भक्तों के सामने भगवान् को घुटने टेकने ही पड़ते हैं। मातृपरायण शिशु को बहुमूल्य रत्न दीजिए, सुन्दर स्वादिष्ट पक्वान्न खाने को दीजिए, फिर भी वह स्नेहमयी, करूणामयी अम्बा और मातृस्तनों को छोड़कर कुछ भी नहीं चाहता। अम्बा की अपेक्षा वह किसी भी पदार्थ से संतुष्ट नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रेमी भक्तों की कामना केवल प्रभु को पाने के लिए ही होती है। एकमात्र प्रभु ही उनके काम्य होते हैं। ज्ञानी के लिए

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परमात्मा निर्गुण, निराकार, निरंजन और अगम तत्त्व हैं। कर्म-योगी के लिए ईश्वर जगत् का आधार, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सृष्टिकर्त्ता, पालक और संहारक हैं। किन्तु अनन्य शरणागत भक्त के लिए यह सब होते हुए भी भगवान् उसके निजजन व आत्मीय होते हैं। वे उसके माता, पिता, सखा आदि सर्वस्व हैं, जिससे वह उनके दिव्य प्रेम, अनुग्रह, सौहार्द और सौन्दर्य की अनुभूति करता रहता है, ऐसे अनन्य प्रेमी भक्तों में भगवान् सदैव बसे रहते हैं और प्रेमवश उसके हृदय से जा नहीं सकते, जैसा कि सूरदासजी ने कहा था—

हाथ छुड़ाए जात हौ, निबल जानि कै मोहि।
हिरदै तें जब जाहुगे सबल बदौंगो तोहि॥

जहाँ भक्तिमार्ग में समर्पण को साधन की पूर्णता मानते हैं, वहाँ योगमार्ग में सर्वात्मना भगवच्चरणों में समर्पण को योग—साधना में सहायक मानते हैं।

यम-नियम-योग साधनामात्र की प्रथम भूमिका हैं। साधना-मार्ग पर गतिशील होने के लिए ये अतीव अनिवार्य पाथेय हैं। ये अन्तरंग बल-संबल हैं।

प्रकृति त्रिगुणमयी है, गुण हैं सत्त्व, रज, तम। ये परिणाम के क्रम से प्रलय-काल में साम्यावस्था में होते हैं और सृष्टि के समय वैषम्य-दशा में। साधन तम से रज में, रज से सत्त्व में, वृत्त्याकार-सत्त्व से शान्त-सत्त्व में प्रतिष्ठित करता है। यही कारण है कि आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार—तीनों अपने-अपने स्थान पर समाधि के लिए आवश्यक साधन हैं।

ऐसी विस्मृति नहीं होनी चाहिए कि प्रकृति का अन्तिम कार्य पंचभूत ही है। पशु-पक्षी-मनुष्यादि के जो विविध शरीर हैं, वे कार्य नहीं हैं, कार्याभास हैं तथा पंचभूत में क्लृप्त है। कार्य का कार्य नहीं हुआ करता। अतएव शरीरों का आदि एवं अन्त पंचभूत है

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है। उन्हीं में ये दीखते हैं और विलीन हो जाते हैं, इसमें मैं-मेरा अविद्या अथवा अविवेक की रचना है, प्रकृति की रचना नहीं। अतः शरीर को योग-साधन के द्वारा द्रव्य-समाधि दी जाती है। शरीर की स्थिरता उसे पंचभूत से एक कर देती है। व्यष्टिमूढ़ता समष्टि-मूढ़ता से एक हो जाती है। यही शरीर की द्रव्य-समाधि है। यदि किसी प्रकार की पीड़ा का अनुभव किए बिना सुखपूर्वक शरीर चिरकाल तक स्थिर रह जाए और चेतना का लोप न हो तो समझना चाहिए कि तमोगुण का व्यष्टि-कार्याभास समष्टि-कार्य में समाधिस्थ हो गया। यही आसन की सिद्धि है। इससे क्षुधा-पिपासा पर विजय प्राप्त हो जाती है। पंचभूतों का जीवन ही शरीर-जीवन के लिए पर्याप्त हो जाता है।

आसन और प्राणायाम

रजोगुण विक्षेप-रूप है। उसके प्राबल्य से क्रियाएँ होती हैं, विक्रिया भी होती है। अविद्या के कारण देह में मैं—मेरा होता है और तद्गत क्रियाशक्ति प्राण में भी मैं—मेरा होता है। इसी से शरीर में श्वासोच्छ्वास, रक्त-संचार, पाचन, मलापसरण, केशवृद्धि, आंगिक परिवर्तन और तो क्या, क्रिया—विक्रिया सब-की-सब होती रहती हैं। प्राणायाम की साधना इन क्रिया-विक्रियाओं की प्रक्रिया को रुद्ध कर देती है, केवल श्वास-क्रिया सक्रिय रहती है। समष्टि क्रिया में व्यष्टि-क्रिया की समाधि ही प्राणायाम की सिद्धि है। इससे देह में सहज बल का विकास और दीर्घ जीवन का प्रकाश भी आ जाता है। प्रारम्भ में आसन-प्राणायाम दोनों के अनेक भेद हो सकते हैं, परन्तु समाधि के लिए उपयोगी एक ही आसन और एक ही प्राणायाम होता है। हिलते हुए या सोते हुए शारीरिक आसन योग के लिए उपयुक्त नहीं हैं। प्रथम में विक्षेप है और द्वितीय में लय। अतएव जैसे समाधि के लिए बैठे हुए शरीर का आसन उपकारक है,

aiGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वैसे ही विविध प्राणायामों में कुम्भक प्रधान प्राणायाम ही योग के लिए उपयोगी होता है।

प्रत्याहार

ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय का सम्बन्ध है। ज्ञानेन्द्रियाँ बाह्य जगत् से सम्पर्क कराती हैं। इनमें आँख और कान विशेष महत्त्व की इन्द्रियाँ हैं। जागरित अवस्था में हम एक तरह से बाह्य विषयों के ही अधीन रहते हैं। इन्द्रिय एवं विषयों का सन्निकर्ष ध्यानात्मक ही होता है। आसन से द्रव्यशक्ति, प्राणायाम से क्रियाशक्ति एवं प्रत्याहार से विविध ज्ञानात्मक इंद्रियशक्ति को समाधिस्थ किया जाता है। इन्द्रिय एवं विषय दोनों की शक्ति सीमित होती है। वे अपने-अपने मंडल में परस्पर मिलते रहते हैं। वे कितनी दूरी तक, कितनी देर तक और किस प्रकार स्वयं में मिलते-बिछुड़ते हैं, यह उनकी शक्ति पर अवलम्बित है। वस्तुतः निखिल सृष्टि का चित्त-तत्त्व एक है। इन्द्रियों की उपाधि से भिन्न-भिन्न विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय-शक्तियाँ चित्त-सत्त्व को वृत्ति हैं। जैसे जल बहने के समय तरंगायित होता है, स्थिरता के समय शान्त होता है, उसी प्रकार इन्द्रियों के द्वारा सत्त्वात्मक ज्ञान-शक्ति भी पृथक्-पृथक् विषयों को ग्रहण करते समय वृत्ति-रूप से विक्षिप्त होती है। और विषयों का ग्रहण न करने पर अपने गोलक में शान्त हो जाती है। इन्द्रिय-वृत्तियों का, अपने-अपने विषयों का आहार न करके अपने-अपने गोलक में स्थिर हो जाना ही प्रत्याहार है। ऐन्द्रियक ज्ञान-वृत्तियों को समाधि ही प्रत्याहार का मुख्य रूप है, इससे विषयों के आकर्षण, प्रलोभन एवं तज्जन्य प्रतिबन्ध को निवृत्त करने में पूरी सहायता मिलती है। अतएव योग के अंगों में आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार द्रव्य-समाधि, क्रिया-समाधि तथा ऐन्द्रियक वृत्ति-समाधि के द्वारा चित्त-निरोध में पूर्णतः उपयोगी हैं। इन्हीं के द्वारा शरीर, कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानेन्द्रियों का वशीकरण सम्पन्न होता है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

निरोध का अर्थ मारण नहीं होता; स्वायत्तीकरण होता है। इन तीनों में इतना अन्तर अवश्य है कि आसन और प्राणायाम तो बिना वैराग्य के केवल अभ्यास से किए जा सकते हैं, परन्तु प्रत्याहार अपनी स्थिरता के लिए वैराग्य की अपेक्षा रखता है। यम-नियम में धर्म, आसन-प्राणायाम में अभ्यास और प्रत्याहार की स्थिरता में वैराग्य हेतु है। अपने लक्ष्य को बार-बार स्पर्श करना अभ्यास है। लक्ष्य के विरोधी का उपेक्षण वैराग्य है। लक्ष्य के विरोधी के प्रति भी स्पर्धा, द्वेष, क्रोध या ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए।

धारणा, ध्यान और समाधि

इन पाँच साधनों के उपरान्त इनकी अपेक्षा तीन अन्तरंग साधनों का आरम्भन होता है। ये तीन अन्तरंग साधन हैं—धारणा, ध्यान और समाधि। इस बात पर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है कि न्यायवैशेषिक एवं पूर्वमीमांसा में द्रव्यरूप से स्वीकृत देश-काल योगाभ्यास में कहाँ विलुप्त हो जाते हैं। देश तथा काल योगसिद्धांत में पदार्थ ही नहीं हैं। वृत्ति के संकोच-विस्तार का नाम 'देश' है और उदय-विलय के क्रम का नाम 'काल' है। ये न प्रकृति हैं, न विकृति हैं, न उभयात्मक हैं। वृत्तिनिरोध से इनका निरोध सम्पन्न हो जाता है। जैसे पंचभूतों में कल्पित आकृतियों अर्थात् कार्याभासों को वस्तु समझना अविवेक है, वैसे ही व्यष्टि-समष्टि-काल को वृत्ति से परे और पृथक् स्वीकारना अविवेक ही है। धारणा के द्वारा देशाकार वृत्ति का मुख्यतः संकोच किया जाता है और ध्यान के द्वारा प्रधानतः कालाकार वृत्ति का संकोच किया जाता है। वृत्ति के संकोचन से साक्षात् सम्बन्ध होने के कारण ही पूर्वोक्त तीन साधनों से ये दोनों अंतरंग हैं।

पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर, ऊर्ध्व-अधः, अन्तर्बहिररूप वृत्तियां ही दिशाओं के आकार में फैली हुई प्रतीत होती हैं। देश के किसी एक आकार में वृत्ति को बाँध दीजिए-मूलाधार या सहस्रार, दिव्य देश

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

वैकुण्ठ, या आध्यात्मिक हृद-देश—इनमें से कहीं भी एक हृद-देश में वृत्तियों को बांध दीजिए। द्विभुज, चतुर्भुज आदि मूर्तियों में भी लम्बाई-चौड़ाई होती है, शालग्राम शिला में भी गोलाई होती है। उनमें कहीं भी वृत्तियों को ऐसा स्थिर कर लेना चाहिए कि दूसरा स्थान स्फुरित न हो। वस्तुतः वृत्ति का स्थानान्तरण नहीं होना चाहिए। स्थानाकार कल्पना ही नानारूप धारण करती है। न वृत्ति देश में रहती हैं, न विदेश जाती है। वृत्ति ही तत्तद्रूप से परिणत होती रहती है। जब वृत्ति अणुदेश में स्थित होती है तब देश का विस्तार विध्वस्त हो जाता है और केवल वृत्ति ही रहती है। यह देश-कल्पना-विनिर्मुक्त वृत्ति परिणामरूप देश के आश्रय से, संकोच-विस्तार से मुक्ति पा लेती है और चित्त-सत्त्व से एकता अर्थात् समाधि की योग्यता अर्जित कर लेती है। समाधि और समाधान का अर्थ एक ही है। सम्यक् आधान का अर्थ है, वृत्ति का अपने चित्त-सत्त्वरूप कारण द्रव्य से अभिन्न होकर स्थित होना।

वृत्तियाँ क्रम अथवा अक्रम से उदय-विलय को प्राप्त होती रहती हैं। उदय एवं शान्ति का क्रम तो रहता ही है। क्रम की संख्या ही वृत्ति का कालाकार परिणमन दिखाती है। भूत, भविष्य, वर्तमान सब वृत्ति में ही है, न प्रकृति में, न पंचभूत में। द्रष्टा से तो इनका सम्बन्ध कल्पित रूप से भी नहीं हो सकता। वस्तुतः काल वृत्तिरूप ही है। वृत्तियों की लय-दशा में काल-संवित् नहीं रहती। जब तक संवित् है, वृत्ति और काल को पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता। जब वृत्ति पुनर्पुनः एक ही लक्ष्य की ओर प्रवाहित होने लगती है, एक ही लक्ष्य के सम्बन्ध में ताना-बाना फैलाने लगती है, तो धीरे-धीरे वृत्ति की गाढ़ता होने पर काल अणु होता जाता है और उसके साथ ही वृत्ति भी अणु होती जाती है। अणु-दशा में जाकर काल अपने अस्तित्व की कल्पना खो देता है और वृत्ति कालाकार परिणाम को छोड़कर लक्ष्याकार हो जाती है। फिर काल-बोध नहीं रहता।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वृत्ति क्रम से हो, अक्रम से हो, प्रतिलोम-क्रम से हो, कैसे भी क्यों न हो, उसमें अणुकाल जान पड़ता है। ध्यान की पराकाष्ठा में उसी काल-कल्पना का लोप हो जाता है। इस समाधि अथवा समाधान-दशा में लक्ष्य-ही-लक्ष्य फुरता है, वह काल नहीं। इसलिए ध्यान समाधि का अव्यवहित पूर्ववर्ती साक्षात् साधन है।

समाधि

यही कारण है कि आत्मा अथवा ब्रह्म देश, काल वस्तु से अपरिच्छिन्न है। वृत्तियों का निरोध अथवा समाधि होने पर देश, काल और विविध कार्य-वस्तुएँ भासती ही नहीं। चित्तवृत्तियाँ एक अखण्ड चित्-सत्व का विभु-द्रष्टा होती हैं। दूसरा पुरुष है, कोई ईश्वर है, प्रकृति प्राकृत हैं, यह सब वृत्तिविलास हैं। वृत्ति जब चित्-सत्व में लीन हो जाती है, तब द्रष्टा किसी का द्रष्टा नहीं दृग्-मात्र ही रहता है इसी को 'कैवल्य' कहते हैं।

ध्यान ही ध्येय के आकार में भासित हो और अपने स्वरूप को छोड़ दे, तो वही 'समाधि' है। 'समाधि' में ध्यान और ध्याता का भान नहीं होता, केवल 'ध्येय' रहता है। उसी के आकार को चित्त 'धारण' कर लेता है। एक प्रकार से उस अवस्था में ध्यान, ध्याता और ध्येय, तीनों की एक-सी प्रतीति होती है।

त्रयमेकत्र संयम :

धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों का समुदाय एक ही विषय में होने से योग-शास्त्र के प्रवर्त्तक उसको 'संयम' कहते हैं। यह संयम इसलिए कहा जाता है कि इन तीनों के सिद्ध होने से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। अतः प्रत्येक में अनेकशः धारणा, ध्यान, समाधि लिखने से विस्तार ज्यादा होगा, इसलिए तीनों की संयम संज्ञा करने से तीनों का ही बोध होगा। क्योंकि समाधि

aj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

के ही अंग धारणा, ध्यान हैं, समाधि अंगी है; तीनों का समुदाय संयम है।

योग की भूमि

योग की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती हैं। इन अवस्थाओं को योग की 'भूमि' कहते हैं। योग-साधन को समर्पित योगी क्रमशः इन भूमियों पर अपना अधिकार प्राप्त करता है। चारों भूमियों पर अधिकार प्राप्त करने के कारण योगियों के भी चार भेद हैं—प्रथमकल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति तथा अतिक्रांतभावनीय।

प्रथमकल्पिक

अष्टांग योग के जिस अभ्यासी का अतीन्द्रिय ज्ञान समाधि की तरफ केवल प्रवृत्तमात्र हुआ है, अभी उसने 'परचित्त' आदि पर अपना वश नहीं प्राप्त किया है, ऐसे अभ्यासी योगी को 'प्रथमकल्पिक' कहते हैं।

मधुभूमिक

निर्विचार-समाधि में स्थित समाहित-चित्त साधक की जो प्रज्ञा होती है, वह 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' कही जाती है। यह अवस्था यथार्थ में योग का निश्चित साधन होने के कारण 'ऋतम्भरा' कही जाती है। इसमें अन्यथा होने की कुछ भी आशंका नहीं होती है। इसीलिए कहा गया है—

आगमेनानुमानेन ध्यानाभ्यासरसेन च।
त्रिधा प्रकल्पयन् प्रज्ञां लभते योगमुत्तमम्॥

'ऋतम्भरा प्रज्ञा' को प्राप्त किया हुआ योगी भूत तथा इन्द्रियों को अपने वश में लाने की इच्छा रखता है। इस प्रकार की प्रज्ञा को प्राप्त करने से वह 'मधुभूमि' को प्राप्त कर लेता है।

'मधुभूमि' को प्राप्त कर योगी विशुद्ध अन्तःकरण का हो जाता है। इस अवस्था में देवगण उस योगी को स्वर्ग में पधारने का

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

निमंत्रण देते हैं तथा स्वर्गीय उपभोग-साधन—विमान, अप्सरा, कल्पवृक्ष आदि के द्वारा प्रलोभन देते हैं तथा अपने अभिलषित कार्यों के सम्पादन-कार्य में उसकी सहायता चाहते हैं। योगी को इन प्रलोभनों से डिगना नहीं चाहिए और समाधि में चित्त को लगाना चाहिए। यह दूसरी अवस्था है।

प्रज्ञाज्योति

इस भूमि में आकर योगी भूत और इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर लेता है। 'परचित्त' के ज्ञानादि को उपलब्ध कर, उस सिद्धि से च्युत न होने पाए; इसके लिए वह अपनी दृढ़ रक्षा करता है। परन्तु फिर भी उसे ऊँचे स्तर पर जाना है, अतएव 'विशोकादि' साधन से लेकर असंप्रज्ञात समाधि की प्राप्ति-पर्यन्त पहुँचने के लिए वह साधन में लगा रहता है। यह 'प्रज्ञाज्योति' नाम की तीसरी अवस्था है।

अतिक्रांतभावनीय

इस अवस्था में योगी का एकान्त ध्येय होता है—'चित्त का लय करना'। 'असंप्रज्ञात' समाधि में पहुँचकर चित्त का लय करना छोड़कर, अब उसे अन्य कुछ भी कर्तव्य नहीं है, क्योंकि सात प्रकार की 'प्रान्तभूमि-प्रज्ञा' उसे प्राप्त हो चुकी है, अतएव अब कुछ और करने को बाकी नहीं बचा है।

प्रज्ञा के भेद

विवेकख्याति को उपलब्ध कर प्रसन्नचित्त योगी को सात प्रकार की प्रांतभूमि-प्रज्ञा प्राप्त होती है। चित्त के अशुद्धि रूप आवरणमल का नाश होने के कारण तामसिक, राजसिक, संसारी ज्ञान न होने से विवेकी साधक की सात प्रकार की प्रज्ञा होती है। विषय के भेद से 'प्रज्ञा' का भेद होता है। ये सात प्रज्ञाएँ निम्नांकित हैं—

(१) प्रकृति के परिणामों से उत्पन्न दुःख 'हेय' हैं। सभी हेय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तत्त्वों का ज्ञान उसने प्राप्त कर लिया है, अब उस साधक का अन्य 'परिज्ञेय' कुछ भी नहीं है।

(२) हेय के सभी कारण नष्ट हो चुके हैं, अब उन्हें क्षीण करने की आवश्यकता नही है। अब कोई 'क्षेतव्य' नहीं बचा है।

(३) निरोधसमाधि के द्वारा साध्य 'हान' को साधक ने सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था ही में साक्षात् निश्चय कर लिया है, अब उसके लिए इसके 'निश्चय' करने को कुछ भी नहीं है।

(४) विवेकख्यातिरूप 'हान' के उपाय को साधक ने प्राप्त कर लिया है, अब इसके परे प्राप्त करने को कुछ भी अवशिष्ट नहीं है।

(५) 'बुद्धि' भोग का सम्पादन कर चुकी है, विवेकख्याति हो गयी है।

(६) सत्त्व, रजस् तथा तमस्, ये तीनों गुण अपने कारण में लीन होने के लिए अभिमुख होकर कारण के साथ-साथ लय को प्राप्त होते हैं। उनका अब कोई कर्तव्य न रहने के कारण, पुनः उनकी अभिव्यक्ति भी न होगी।

(७) इस अवस्था में गुणों के सम्बन्ध से रहित, स्वरूप-मात्र ज्योति, अर्थात् ज्योतिःस्वरूप अमल केवली पुरुष जीवितावस्था में ही मुक्त हो जाता है।

इन सातों प्रांतभूमिप्रज्ञाओं का साक्षात् अनुभव करनेवाला पुरुष 'कुशल' कहलाता है। प्रधान-लयावस्था में भी गुणातीत होने के कारण चित्त का लय होने पर भी पुरुष 'मुक्त कुशल' कहा जाता है। 'धारणा', 'ध्यान' एवं 'समाधि', ये 'सम्प्रज्ञात समाधि' के अंतरंग हैं, परन्तु 'निर्बीजसमाधि' के बहिरंग हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

परिणाम

त्रिगुणात्मक होने के कारण 'चित्त' परिणामी है। उसमें रजोगुण है और सतत क्रियाशीलता रजोगुण का स्वभाव है। अतएव किसी भी अवस्था में 'चित्त' क्रियाशील रहेगा ही।

चित्त का स्वरूप

चित्त की दो मुख्य अवस्थाएँ होती हैं—कार्यावस्था और निरोधावस्था।

कार्यावस्था में वृत्तियों के द्वारा सर्वदा कोई-न-कोई क्रिया होती ही रहती है। इसे 'संसारावस्था' भी कहते हैं। योगशास्त्र में इसे 'व्युत्थान' अवस्था कहा गया है। दूसरी वह अवस्था है, जिसमें वृत्तियाँ चित्त में ही निरूद्ध हो गयी हैं। इस अवस्था में स्थूल दृष्टि से कोई भी क्रिया स्पष्ट नहीं होती है। इसे 'निरोध' अवस्था कहते हैं।

परिणाम का स्वरूप

किंतु 'चित्त' किसी भी अवस्था में क्रियाशील रहता ही है। क्रियाओं के द्वारा जो परिवर्त्तन 'चित्त' में होता रहता है, उसे ही 'परिणाम' कहते हैं। अर्थात् एक स्थिर वस्तु में, अर्थात् 'धर्मी' में, क्रिया के द्वारा एक धर्म का तिरोभाव होकर दूसरे धर्म का आविर्भाव होना ही 'परिणाम' है। सत्कार्य-संपोषक योग-शास्त्र में 'व्युत्थान' और 'निरोध', ये दोनों अवस्थाएँ धर्मों का केवल 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' हैं। अर्थात् 'व्युत्थान' से 'निरोध' को प्राप्त होने में 'व्युत्थान' का 'तिरोभाव' और 'निरोध' का 'आविर्भाव' एवं 'निरोध' से 'व्युत्थान' को प्राप्त होने में 'निरोध' का 'तिरोभाव' तथा 'व्युत्थान' का 'आविर्भाव' होता रहता है। ये सभी परिणाम हैं।

निरोध-परिणाम

किन्तु 'निरोध' काल में भी 'व्युत्थान' का 'तिरोभाव' तो चित्त में ही रहता है और साथ-साथ 'निरोध' का 'आविर्भाव' भी उसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

चित्त में रहता है। 'आविर्भाव' और 'तिरोभाव' ये दोनों ही चित्त के ही धर्म हैं। ये दोनों धर्म एक ही निरोधकाल में चित्त में रहते हैं। अभिप्राय यह है कि निरोधकाल में 'व्युत्थान' का तिरोभाव होने से, उसमें साधारण रूप में कोई क्रिया तो नहीं दीख पड़ती एवं 'निरोध' का आविर्भाव होने पर भी उसमें कोई परिवर्तन दीख नहीं पड़ता, परन्तु यह स्पष्ट है कि 'तिरोभाव'-रूप तथा 'आविर्भाव'—रूप संस्कार तो उस चित्त में साथ ही साथ वर्तमान हैं। हमें यह दिखाई पड़ता है कि साधक क्रमशः अधिक समय तक चित्तवृत्ति का निरोध करता है, अर्थात् 'व्युत्थान-संस्कार' क्षीण होता जाता है और निरोध-संस्कार उत्तेजित हो जाता है। इस प्रकार क्रमिक और निरन्तर अभ्यास के द्वारा एक दिन साधक के चित्त से 'व्युत्थान-संस्कार' सदा के लिए विलीन हो जाएगा और 'निरोध-संस्कार' पूर्ण बलवान होकर दृढ़ हो जाएगा और चित्त शांत-प्रवाह में मग्न हो जाएगा। इन दोनों संस्कारों का परिणाम निरोधावस्था में प्राप्त 'चित्त' में ही होता है। अतएव यह 'निरोध-परिणाम' कहा जाता है।

समाधि-परिणाम

चित्त के अनेक धर्मों में, सर्वार्थता और एकाग्रता ये भी दो धर्म हैं। समाधिकाल में सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय होता है, अर्थात् 'सर्वार्थता' का संस्कार एवं उससे उत्पन्न प्रत्ययों का क्षय तथा 'एकाग्रता' का संस्कार एवं उससे उत्पन्न 'एकप्रत्ययता' का उदय, दोनों ही साथ-साथ चित्त में होते हैं। इन दोनों अवस्थाओं में 'चित्त' धर्मी के रूप में विद्यमान होकर समाहित रहता है। यही समाधि-परिणाम है।

'निरोध-परिणाम' में व्युत्थान और निरोध के संस्कारों के ही क्षय और उदय होते हैं, किन्तु 'समाधि-परिणाम' में संस्कार तथा प्रत्यय दोनों के ही क्षय और उदय होते हैं।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

एकाग्रता-परिणाम

पूर्वकाल में अवस्थित विक्षिप्त प्रत्ययों का, समाधि में स्थित चित्त में, 'लय' होता है और तत्सदृश अन्य प्रत्ययों का 'उदय' होता है, अर्थात् समाधिकाल में शांत प्रत्यय और उदित प्रत्यय, दोनों तुल्य रूप में चित्त में प्रवाहित होते रहते हैं। इन दोनों का तुल्य रूप में प्रवाहित होना ही चित्त का 'एकाग्रता-परिणाम' कहा जाता है। एकाग्रता-परिणाम में सदृश प्रवाहिता अत्यंत आवश्यक है। यही इस परिणाम की विशेषता है।

एकाग्रता-परिणाम समाधिमात्र में होता है। समाधि-परिणाम 'संप्रज्ञात समाधि' में होता है। 'निरोध-परिणाम' 'असंप्रज्ञात समाधि' में होता है।

एकाग्रता-परिणाम 'प्रत्यय'-रूप चित्त के धर्म का, समाधि-परिणाम 'प्रत्यय' और 'संस्कार'-रूप चित्त के धर्म का तथा निरोध-परिणाम केवल 'संस्कार'-रूप चित्त के धर्म का होता है।

भूतों में परिणाम—इनके अतिरिक्त भूतों में तथा इन्द्रियों में भी परिणाम होते हैं, जिन्हें धर्म-परिणाम, लक्षण-परिणाम तथा अवस्था-परिणाम कहते हैं। ये समस्त परिणाम उपर्युक्त परिणामों में भी होते हैं।

धर्म-परिणाम

चित्तरूप धर्मों में व्युत्थान-धर्म का तिरोभाव और निरोध-धर्म का प्रादुर्भाव ही धर्म-परिणाम है।

लक्षण-परिणाम

'लक्षण' का अर्थ है 'काल'। धर्मों का तीनों कालों के रूप में होना लक्षण-परिणाम है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, समाधि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

परिणाम में 'व्युत्थान' का 'तिरोभाव' तथा 'निरोध' का 'आविर्भाव' होता है। निरोध में तीनों कालों का बोध होता है। प्रत्येक वस्तु के 'अनागत', 'वर्तमान' तथा 'अतीत', ये तीन स्वरूप हैं। 'निरोध', 'अनागत' रूप को छोड़कर 'वर्तमान' रूप को धारण करता है, जिस समय उसकी अभिव्यक्ति होती है, फिर वही 'अतीत' रूप को भी प्राप्त होता है। इन तीनों कालों में समाहित चित्त 'धर्मी' के रूप में विद्यमान रहता है। किसी भी एक काल में अन्य दोनों कालों से रहित वह नहीं रहता। अर्थात् 'वर्तमान' काल में भी 'अनागत' तथा 'अतीत' काल से पृथक् वह नहीं होता। इसी प्रकार व्युत्थान में भी वर्तमान, अतीत तथा अनागत, सभी रहते हैं। अनागत, वर्तमान तथा अतीत, इन कालों से कभी भी कोई भी वस्तु पृथक् नहीं होती। इस प्रकार लक्षण-परिणाम सभी भूतों तथा इन्द्रियों में होता है।

अवस्था-परिणाम

निरोध-परिणाम में कहा गया है कि निरोध के समय में 'व्युत्थान-संस्कार' दुर्बल होते हैं तथा 'निरोध-संस्कार' बलवान् होते हैं। यही दुर्बल और सबल होना'अवस्था-परिणाम' कहा जाता है।

इन्द्रियों में परिणाम :—इसी प्रकार इन्द्रियों में भी ये परिणाम होते हैं। 'चक्षु' को लेकर विचार करने से 'नील' आदि रूपों का 'आलोचन' है, वह धर्म-परिणाम है; धर्म में जो वर्तमान, अतीत और अनागत रूप होते है; वे ही लक्षण-परिणाम हैं तथा उसी में जो स्फुटत्व, अस्फुटत्व रूप होता है, उसे ही अवस्था-परिणाम कहते हैं।

ये समस्त परिणाम 'धर्मी' में धर्म, लक्षण तथा अवस्था को लेकर ही होते हैं। भिन्न-भिन्न धर्मों से सम्बद्ध होकर भी 'धर्मी'

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अवस्थाओं-स्थितियों में अर्थात् अनागत, वर्तमान तथा अतीत अवस्थाओं में, स्थिर-रूप अपने स्वरूप से पृथक् नहीं होता। जैसे—मिट्टी' में 'घट' अनागत' अवस्था में हैं, बाद को 'घट' होकर 'वर्तमान' अवस्था को प्राप्त होता है। बाद में वही 'घट' विनष्ट होकर 'अतीत' अवस्था को प्राप्त होता है। ये तीन स्वरूप देखने में आते हैं। इन तीनों में 'धर्मी', अर्थात् 'मिट्टी', विद्यमान रहता है। अतएव वस्तुतः 'परिणाम' एक ही है किन्तु भाव-भेद से यह पृथक्-पृथक् भासता है।

कैवल्य

हमारे कर्म अपने पीछे वासनाएँ छोड़ जाते हैं; और ये वासनाएँ हमारे आगामी कृत्यों को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार हमें अपने आपको जकड़ने के लिए जंजीरें बनाते जाते हैं। योग-साधन के सफल होने पर वासनाएँ निःशक्त हो जाती हैं; उनकी स्थिति दग्ध बीज की होती है, जिसमें आग उत्पन्न करने की शक्ति नहीं होती। योगी काम तो करता है, परन्तु यह काम किसी कामना की पूर्ति के लिए नहीं होता। उसके लिए कर्म और अकर्म का भेद मिट जाता है; वह शुभ और अशुभ की सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है।

सूत्र ७ में कहा है—

'योगी का कर्म शुक्ल या कृष्ण (अच्छा या बुरा) नहीं होता; अन्य पुरुषों के कर्म तीन प्रकार के (शुभ, अशुभ और मिश्रित) होते हैं।'

योग-संयम की सिद्धि के उपरान्त भी नीचे सरक जाने का डर बना रहता है। सूत्र २६ में कहा है—

'विवेक प्रत्यय के छिद्रों में, संस्कारों से अन्य प्रत्यय होते हैं।' असावधानी की स्थिति में यह जग जाते हैं। योगी के लिए अनिवार्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

है कि वह सतत सजग रहे। अन्त में योगी को 'मेघ-समाधि' प्राप्त होती है—वह हर ओर से धर्म से आच्छादित हो जाता है। उसकी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं; जानने के लिए भी उसे बहुत कम रह जाता है।

धर्म-मेघ समाधि अंतिम मंजिल है; इससे परे की मंजिल 'प्रसंख्यान' है। प्रसंख्यान का अर्थ पुरुष को प्रकृति और उसके विकारों से भिन्न देखना है। इन दो शब्दों का प्रयोग बताता है कि सांख्य हमें जो क्षमता प्रदान करता है, उसमें नीचे फिसल जाने की सम्भावना सजीव रहती है; योग-संयम हमें एक पग आगे ले जाता है। 'धर्ममेध समाधि' होने पर यह सम्भावना भी समाप्त हो जाती है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, योग सांख्य का पूरक है। प्रकृति का विकास पुरुष की दृष्टि में होता है। पुरुष अपने आपको प्रकृति के विकारों में लिप्त कर देता है। यह भोग है; दूसरे पक्ष से देखें तो यह अविद्या क्लेशों की जड़ है। प्रकृति का विकास सत्व, रज, तम तीन गुणों का खेल है। जब मनुष्य संसार-लीला को खेल की स्थिति में देख लेता है तो उसे नाट्यशाला में हँसना-रोना निरर्थक प्रतीत होने लगता है। प्रकृति अपना नृत्य बन्द कर देती है; वह विवेकी पुरुष के पूर्व-भ्रम को कायम नहीं रख सकती। गुणों के खेल से दृष्टि हटाकर पुरुष फिर अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है। उसे आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दुःखों से मुक्ति मिलती है। इसके बाद पुरुष को गुणों से आत्यंतिक वियोग हो जाता है। इसे ही 'कैवल्य' कहते हैं। इस अवस्था में 'पुरुष' या 'चिति-शक्ति', स्वच्छ ज्योतिर्मय अपने स्वरूप में 'केवली' होकर प्रतिष्ठित हो जाती है। यही योग की 'मुक्ति' है।

'कैवल्यपाद' के अंतिम सूत्र (३४) में कहा है—

'पुरुषार्थ-रूप गुणों का समाप्त होना, उनका अपने कारण में लय होना, चित्त-शक्ति का अपने स्वरूप में स्थिर होना कैवल्य है।'

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

कर्मविचार

समस्त दर्शनों में कर्म' का विचार किया गया है। वस्तुतः 'कर्म' हमारे जीवन का तथा दर्शन का एक बहुत ही विशिष्ट अंग है। संसार की प्रत्येक वस्तु में 'रजोगुण' रहता ही है। रजोगुण का स्वभाव है—क्रियाशीलता। अतएव प्रत्येक वस्तु में किसी-न-किसी रूप में 'क्रिया' रहती ही है। सभी प्राणियों को 'कर्म' करना ही पड़ता है। योगशास्त्र में तो इसका अतीव ऊँचा स्थान है। परम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए 'कर्म' एक मुख्य साधन है। कर्म करने के अनन्तर उससे चित्त में 'संस्कार' अर्थात् 'कर्माशय' उत्पन्न होता है और वही 'वासना' को उत्पन्न करता है और फिर उसी 'वासना' के अनुकूल जीव की उत्पत्ति तथा संसार में उसके कर्म होते हैं। यह 'कर्मचक्र' अबाध गति से सतत ससार में गतिमान ही रहता है। कर्म की गति अनादि है। 'अविद्या' अनादि है और इसी 'अविद्या' के कारण 'कर्म' की उत्पत्ति होती है।

'कर्म' चार प्रकार का होता है—'कृष्ण' 'शुक्ल-कृष्ण', 'शुक्ल' तथा 'अशुक्ल-अकृष्ण'। दुर्जनों के कर्म 'कृष्ण' होते हैं। बाह्य साधनों से उत्पन्न 'शुक्ल-कृष्ण' कर्म साधारण लोगों के होते हैं। जीवन-यापन करने के लिए उन्हें साधारण रूप से पुण्य और पाप दोनों ही करने पड़ते हैं। अतएव 'शुक्ल-कृष्ण' कर्म के द्वारा दूसरों को पीड़ित करने से तथा उनके प्रति अनुग्रह दिखाने से उनका कर्माशय संचित होता है। तपस्या, स्वाध्याय तथा ध्यान में निरत लोगों के 'कर्म' केवल मन के अधीन होते हैं, इसलिए उन्हें बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती। अतः इस प्रकार के कर्मों के द्वारा निश्चित रूप से न तो दूसरों को पीड़ा ही दी जा सकती है और न अनुग्रह ही दिखाया जा सकता है। इन कर्मों को 'शुक्ल' कर्म कहते हैं।

योगी लोग उन्हीं कर्मों को करते हैं, जिनके द्वारा उनकी चित्त-वृत्तियाँ निरुद्ध हो सकें। अतएव उनके चित्त में विद्यमान पुण्य और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

पापों के संस्कार भी निवृत्त हो जाते हैं। वे लोग पाप उत्पन्न करने वाले कर्म तो करते ही नहीं, किन्तु तप, ध्यान आदि के द्वारा पुण्य-जनक जो कर्म करते हैं, उनके फल की प्राप्ति की इच्छा भी उन्हें नहीं होती। इसलिए उनके कर्म 'अशुक्ल-अकृष्ण' कहे जाते हैं। कर्म के फलों की इच्छा न होने से 'अशुक्ल' तथा निषिद्ध कर्मों को न करने के कारण 'अकृष्ण' योगियों के कर्म होते हैं।

सामान्य जनों के 'कर्म' प्रथम तीन प्रकार के ही होते हैं। इन तीनों कर्मों से उसी प्रकार की वासनाएं भी उत्पन्न होती हैं, जिस प्रकार के वे कर्म होते हैं। 'दिव्य कर्म' करने से उसी के अनुसार 'दिव्य वासना' उद्भूत होती है। मानुषिक कर्मों से उत्पन्न वासनाओं के फलों के भोग के समय दिव्य कर्म के फलों का कभी भी भोग नहीं होता है। इसी प्रकार नारकीय तथा तैर्यक् वासनाओं के लिए भी उपर्युक्त ही नियम है।

वासनाओं की लीला भी बेहद विचित्र होती है। कोई भी फल-भोग कभी भी बिना उसकी वासना के नहीं होता। देश और काल इस नियम को बाधित नहीं करते। कोई भी कर्म-फल आकस्मिक नहीं होता। मृत्यु के पश्चात् ही किसी का जन्म पूर्व-वासनाओं के सहयोग के बिना नहीं होता। जिस योनि में जिसका जन्म होने को होता है, उस योनि के कर्म-फलों का भोग करने के योग्य पूर्व-पूर्व-जन्मांतरों में किए हुए तदनुरूप कर्मों से उत्पन्न वासनाएं अभिव्यक्त हो जाती हैं। जैसे—एक जीव पहले मनुष्य था। वह मृत्यु के पश्चात् पशुयोनि में उत्पन्न होने को जा रहा है। इस अवसर पर उस मनुष्य ने अनेक पूर्व-जन्मों में पशुयोनि के उचित कर्म किए थे और तदनुकूल उसकी पाशविक वासनाएं भी चित्त में विद्यमान थीं। अब अनेक जन्म व्यतीत होने पर भी, पाशविक जन्म लेने के इस अवसर पर, वे ही मान्यताएं उद्बुद्ध होकर उसके इस

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

पशुयोनि में जन्म लेने का कारण होंगी। ये वासनाएँ अनादि काल से चली आती हैं।

ये वासनाएँ हेतु, फल, आश्रय तथा आलम्बन के द्वारा स्थिर रहती हैं और इनके न रहने पर, अर्थात् नाश होने से, नहीं रहतीं। जैसे—

हेतु—धर्म से सुख, अधर्म से दुःख, सुख से राग और दुःख से द्वेष; इन दोनों से 'प्रयत्न', जिसके कारण मन में, वचन में तथा शरीर में चेष्टाएँ होती हैं, जिनके द्वारा जीव किसी को अनुगृहीत करता है या पीड़ित करता है। इससे धर्म और अधर्म, सुख और दुःख तथा राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। इसी क्रम से इन ६ धर्म आदि 'शलाकाओं' के सहारे यह 'संसारचक्र' चलता है। यही 'संसार-चक्र' वासनाओं का 'हेतु' है। प्रतिपल क्रियाशील इस संसार-चक्र को नेत्री है 'अविद्या'। यही समस्त क्लेशों का मूल है, अतएव यही है वासनाओं का वास्तविक हेतु।

फल—जिसको आश्रय या लक्ष्य मानकर उपर्युक्त धर्म आदि की विद्यमानता हो, वही 'फल' है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य-रूप फल कारणरूप वासना में विद्यमान रहता ही है।

आश्रय—साधिकार मन वासनाओं का 'आश्रय' है। अधिकार से च्युत निराश्रय होकर रहनें वाले मन में वासना नहीं रह सकती है।

आलम्बन—अभिमुख में प्राप्त वस्तु जिस वासना को उत्पन्न करे, वही उस वासना का 'आलम्बन' होता है।

इस प्रकार 'हेतु' आदि ही 'वासना' को उत्पन्न करते हैं और इनके न होने से 'वासना' उत्पन्न नहीं होती।

संस्कार—जैसा कि ऊपर कहा गयाहै—'कर्म' करने के पश्चात् उससे 'कर्म-संस्कार' या 'कर्माशय' बनता है। ये 'संस्कार' पुण्यात्मक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

तथा अपुण्यात्मक होते हैं और काम, लोभ, मोह तथा क्रोध से उत्पन्न होते हैं। ये पुनः 'दृष्टजन्मवेदनीय' तथा 'अदृष्टजन्मवेदनीय' हैं। इनमें तीव्र वैराग्य से की गयी तपस्या, मन्त्रजप तथा समाधि के द्वारा अर्थात् ईश्वर, देवता, महर्षि एवं महानुभावों की आराधना से उत्पन्न 'कर्माशय' 'पुण्यात्मक' होते हैं, ये सद्यः फलदायक होते हैं। इसी प्रकार तीव्र अविद्या आदि क्लेशों से भयभीत, व्याधिग्रस्त, दीन, शरणागत तथा महानुभावों के प्रति अथवा तपस्वियों के प्रति बारंबार अपकार करने से 'पापात्मक' 'कर्माशय' उत्पन्न होता है। ये भी सद्यः अपना फल देते हैं।

नारकीयों का 'दृष्टजन्मवेदनीय' कर्माशय नहीं होता और जीवन्मुक्तों का 'अदृष्टजन्मवेदनीय' कर्माशय नहीं होता।

ईश्वर

योगशास्त्र में 'ईश्वर' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही तो योग है। ईश्वर या उसके वाचक प्रणव के जप से तथा उसके अर्थ की भावना करने से चित्त 'एकाग्रता' को प्राप्त करता है; जिसके द्वारा क्रमशः चित्तवृत्तियों का निरोध होता है। इसलिए ईश्वर के संबंध में यहाँ चर्चा आवश्यक है।

पतंजलि ने योगसूत्र में 'ईश्वर' का लक्षण किया है—'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः'—अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश; इन पाँच क्लेशों से; पुण्य एवं पाप-कर्मों से; कर्मों से उत्पन्न जाति, आयु तथा भोग-रूप फलों से; उनसे उत्पन्न वासनाओं से (जो चित्त में रहते हैं) असंस्पृष्ट, एक विशेष प्रकार के पुरुष को ईश्वर कहते हैं। उपर्युक्त वासनाओं के के कारण ही 'जीव' को भोग करना पड़ता है, परन्तु 'ईश्वर' इन भोगों से असंयुक्त है।

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ईश्वर के स्वरूप की अन्य जीवों के स्वरूप के साथ तुलना दिखाकर स्पष्ट करना आवश्यक है। प्रश्न उठता है कि 'ईश्वर' क्या 'केवली पुरुष' के समान है? समाधान में कहा जाता है—नहीं। 'प्राकृतिक', 'वैकारिक' तथा 'दाक्षिणिक' इन तीन बंधनों से मुक्त होकर ही 'जीव' 'केवली पुरुष' होते हैं; किंतु 'ईश्वर' में न कभी बंधन था और न कभी होगा। इसलिए 'ईश्वर' 'केवली पुरुष' से भिन्न है।

'ईश्वर' 'मुक्त पुरुषों' से भी भिन्न है, क्योंकि 'मुक्त पुरुष' पहले बंधन में रहकर पश्चात् मुक्त होते हैं। जैसे—कपिल आदि ऋषि पहले बंधन में में, पश्चात् मुक्त हुए। 'ईश्वर' पूर्व में कभी भी बंधन में नहीं था। इसलिए 'ईश्वर' 'मुक्त पुरुषों' से भी भिन्न है।

'प्रकृति' को ही आत्मा समझनेवाला 'पुरुष' शरीर का नाश होने पर, अर्थात् मरने पर, 'प्रकृतिलीन' हो जाता है अथवा 'प्रकृतिलीन पुरुष' मुक्तवत् होकर भी पुनः हिरण्यगर्भ के स्वरूप को धारण करता है। इस प्रकार 'प्रकृतिलीन पुरुष' को उत्तर-काल में बंधन होने की संभावना रहती है। 'ईश्वर' को उत्तर-काल में भी बंधन नहीं होता। इसलिए 'ईश्वर' 'प्रकृतिलीन पुरुष' से भिन्न है।

'ईश्वर' में ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति आदि गुण हैं। इसीलिए यह 'ईश्वर' कहा जाता है। प्रकृष्ट सत्त्व-रूप उपादान के कारण ही 'ईश्वर' में शाश्वतिक 'उत्कर्ष' है अर्थात् 'ईश्वर' में अनादि विवेक-ख्याति है, सर्वज्ञता तथा सर्वभावाधिष्ठातृत्व है। यह सर्वापेक्षया उत्तम, अर्थात् निरतिशय है। 'ईश्वर' से अधिक अतिशय गुणसंपन्न दूसरा कोई नहीं है। 'ईश्वर' वही है, जिसमें उपर्युक्त गुणों की पराकाष्ठा हो। इन बातों का ज्ञान हमें शास्त्रों से प्राप्त होता है। ये सब अनादि काल से 'ईश्वर' में हैं। अतएव 'ईश्वर' सदैव 'ईश्वर' है, अर्थात् 'ऐश्वर्य-सम्पन्न' है तथा सदैव 'मुक्त' है। यह सर्वज्ञ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

यह जानना चाहिए कि ऐसी स्थिति में भी यह एक 'पुरुष विशेष' ही है। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि पतंजलि ने सांख्यशास्त्र के पचीस तत्त्वों के अतिरिक्त ईश्वर-रूप में एक भिन्न तत्त्व नहीं माना। अनेक प्रकार के वैलक्षण्यों से युक्त होने पर भी, यह एक प्रकार का 'पुरुष विशेष' ही है।

इसे अपने उद्धारार्थ कुछ करना नहीं है, फिर भी प्राणियों के प्रति अनुग्रह करना इसका उद्‌देश्य है। ज्ञान तथा धर्म के उपदेशों के द्वारा कल्प, प्रलय तथा महाप्रलय में, संसार के लोगों का उद्धार हम करेंगे, इस प्रकार जीवों के प्रति अनुग्रह दिखाने की प्रतिज्ञा 'ईश्वर' ने की है। यह पूर्व के कपिल आदि गुरुओं का भी गुरु है।

ईश्वर का प्रतीक

तस्य वाचकः प्रणवः—प्रणव अर्थात् ओंकार ईश्वर का वाचक है।

हमारे मन में जो भी भाव उठता है, उसका एक प्रतिरूप शब्द भी रहता है ; इस शब्द और भाव को अलगाना असंभव है। एक ही वस्तु के बाह्य भाग को शब्द और अन्तर्भाग को विचार या भाव कहते हैं। कोई भी व्यक्ति विश्लेषण के आधार पर भाव को शब्द से जुदा नहीं कर सकता। बहुतों का मत है कि कुछ लोग सम्मिलित रूप से यह तय करने बैठे कि किस भाव के लिए किस शब्द का प्रयोग किया जाए, और इस प्रकार भाषा ने जन्म लिया। किन्तु अब इस बात की भ्रमात्मकता सिद्ध हो चुकी है। जब से मनुष्य विद्यमान है, तब से शब्द और भाषाएँ रही हैं। यह दीगर प्रश्न है कि एक भाव और एक शब्द में परस्पर क्या सम्बंध है। यद्यपि हम देखते हैं कि एक भाव के साथ एक शब्द का रहना अनिवार्य है तथापि ऐसा नहीं कि एक भाव एक ही शब्द द्वारा प्रकाशित हो। बीस विभिन्न देशों

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

में भाव एक ही होने पर भी भाषाएँ बिलकुल भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। प्रत्येक भाव को प्रकट करने के लिए एक-न-एक शब्द की आवश्यकता अनिवार्य है, किंतु इस एक भाव के प्रकाशक शब्दों का एक ही उच्चारण-विशिष्ट होना कतई आवश्यक नहीं। विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न उच्चारण-विशिष्ट शब्द प्रयुक्त होंगे। यद्यपि ये शब्द भिन्न-भिन्न होते हैं, तो भी शब्द और भाव का पारस्परिक संबंध स्वाभाविक है। यदि वाच्य और वाचक के बीच प्रकृत संबंध रहे, तभी यह कहा जा सकता है कि भाव और शब्द के बीच परस्पर संबंध है। यदि ऐसा न हो, तो वह वाचक शब्द कभी सर्वसाधारण की समझ में नहीं आ सकता। वाचक वाच्यपदार्थ का प्रकाशक होता है। यदि वह वाच्य वस्तु पहले से अस्तित्व में रहे, और हम यदि पुनंपुनः परीक्षा द्वारा यह देखें कि उस वाचक शब्द नें उस वस्तु को अनेकशः सूचित किया है, तो हम निश्चित रूप से यह मान सकते हैं कि उस वाच्य और वाचक के बीच एक यथार्थ सम्बन्ध है। यदि ये वाच्य-पदार्थ न भी रहें, तो भी हजारों मनुष्य उनके वाचकों के द्वारा ही उनका ज्ञान प्राप्त करेंगे। पर हाँ, वाच्य और वाचक के बीच एक स्वाभाविक सम्बन्ध की उपस्थिति अनिवार्य शर्त्त है। ऐसा होने पर, ज्योंही उस वाचक-शब्द का उच्चारण किया जाएगा, त्योंही वह उस वाच्य-पदार्थ की बात मन में ला देगा। सूत्रकार कहते हैं; ओंकार ईश्वर का वाचक है। सूत्रकार ने विशेष रूप से 'ॐ' शब्द का ही उल्लेख क्यों किया है? 'ईश्वर'—इस भाव की अभिव्यक्ति के लिए तो शत-शत शब्द हैं। एक भाव के साथ हजारों शब्द जुड़े रहते हैं। 'ईश्वर'—इस भाव का सैकड़ों शब्दों के साथ सम्बन्ध है और उनमें से प्रत्येक ही तो ईश्वर का वाचक है। फिर उन्होंने 'ॐ' को ही क्यों चुना? हाँ, ठीक हैं; पर वैसा होने पर भी उन शब्दों में से, एक सामान्य शब्द चुन लेना चाहिए। उन सारे वाचकों का एक सामान्य आधार निकालना होगा, और जो वाचक शब्द सबका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सामान्य वाचक होगा, वही सर्वश्रेष्ठ समझा जाएगा, और वास्तव में वही उसका यथार्थ वाचक होगा। किसी शब्द के उच्चारण के लिए हम कण्ठनली और तालू का आधाररूप में व्यवहार करते हैं। क्या ऐसा कोई भौतिक शब्द है, जिसको कि अन्य सब शब्द अभिव्यक्ति हैं, जो स्वभावतः ही दूसरे सब शब्दों को स्पष्ट कर सकता है? हाँ, 'ओम्' (अउम्) ही वह शब्द है; वही सारे शब्दों की भित्ति-स्वरूप है। उसका प्रथमाक्षर 'अ' सभी शब्दों का मूल है—वह सारे शब्दों की कुंजी के समान है, वह जिह्वा या तालू के किसी अंश का स्पर्श किए बिना ही उच्चारित होता है। 'म' सकल शब्दों का अंतिम शब्द है, उसका उच्चारण करने से दोनों ओठों को बन्द करना पड़ता है। और 'उ' शब्द जिह्वा के मूल से लेकर मुख के मध्यवर्ती शब्दाधार की अन्तिम सीमा तक मानो ढुलकता आता है। इस प्रकार 'ॐ' शब्द के द्वारा शब्दोच्चारण की सम्पूर्ण क्रिया प्रकट हो जाती है। अतएव वही स्वाभाविक वाचक शब्द है, वही सब विभिन्न शब्दों की जननीस्वरूप है। जितने प्रकार के शब्द उच्चरित हो सकते हैं—हमारी ताकत में जितने प्रकार के शब्द-उच्चारण की संभावना है, 'ओम्' उन सभी का सूचक है। भारतवर्ष में जितने सारे विभिन्न धर्मभाव है; यह ओंकार उन सबका केन्द्रस्वरूप है, वेद के सब विभिन्न धर्मभाव इस ओंकार का ही अवलम्बन किए हुए हैं।

इस 'ॐ' का वारम्वार जप करना चाहिए। इस ओंकार का वारम्बार जप करना और इसके अर्थ का मनन करना ही आन्तरिक सत्संग है। हम जप करें और साथ ही इस शब्द के अर्थ का ध्यान करें। ऐसा करने से, हम पाएंगे कि हृदय में ज्ञान का आलोक विकीर्ण हुआ और आत्मा प्रकाशित हो गई। इस ओंकार के जप और चिन्तन से चित्त की एकाग्रता होती है। यही विष्णुपुराण में कहा गया है—

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

स्वाध्यायाद् योगमासीत योगात् स्वाध्यायमामनेत् ।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥

अर्थात् 'प्रणव' के जप के द्वारा 'योग' का अभ्यास करें। समाधि की प्राप्ति होने पर पुनः 'प्रणव' का जप करना चाहिए। स्वाध्याय, अर्थात् जप एवं योग-सम्पत्ति; अर्थात् असंप्रज्ञात् समाधि, इन दोनों से परमात्मा का साक्षात्कार होता है। ओंकार के उच्चारण से समस्त कर्मों का अंगवैगुण्य दूर हो जाता है तथा वे पवित्र और कल्याणकर हो जाते हैं। इसीलिए वेदवादी अर्थात् वेदोक्त मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक यज्ञादि कर्म करने के अधिकारी विद्वान् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के यज्ञ, दान, तप आदि समस्त शास्त्रविहित शुभ कर्म सदा ओंकार के उच्चारणपूर्वक ही आरंभ होते हैं। वे कभी भी किसी काल में कोई भी शुभ कर्म भगवान् के पवित्र नाम ओंकार का उच्चारण किए बिना नहीं करते।

ईश्वर के प्रणिधान से 'प्रत्यक्', 'चेतन', अर्थात् अपने स्वरूप का साक्षात्कार होता है और योग के मानसिक एवं शारीरिक विघ्न-समूह दूर होते हैं। अर्थात् व्याधि, चित्त की अकर्मण्यता (स्त्यान), संशय, समाधि के साधनों की भावनाओं का अभाव (प्रमाद), शरीर और चित्त का आलस्य, तृष्णा, विपर्यय ज्ञान, 'मधुमती' आदि समाधि की भूमियों की अप्राप्ति, लब्ध-भूमि में स्थिर होकर न रहना, इन नौ चित्त-विक्षेपों का नाश होता है।

समाहित-चित्त होकर 'ईश्वर' के चिंतन से सात्त्विकी बुद्धि निर्मल हो जाती है। योगी के मन में इच्छा के अनभिघात-रूप ऐश्वर्य का क्रमिक संचार होता है। इसमें भी बहुत विघ्न होते हैं। उन विघ्नों का नाश 'ईश्वर' के ध्यान से होता है। इसलिए चित्त को समाधिस्थ बनाकर मुक्ति को प्राप्त करने के लिए ईश्वर का चिन्तन एक बहुत ही उपयुक्त साधन है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

jGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalga

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

uru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jal

ublic Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo
Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

ublic Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-Mo

Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation,

n Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-

ru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Ja

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-
SatGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jaigaon.